ISSN 2321-9858

साहित्य, संस्कृति और विचार का त्रैमासिक

वागर्थ

अक्टूबर-दिसंबर, 2019
मूल्य : 50 रुपए

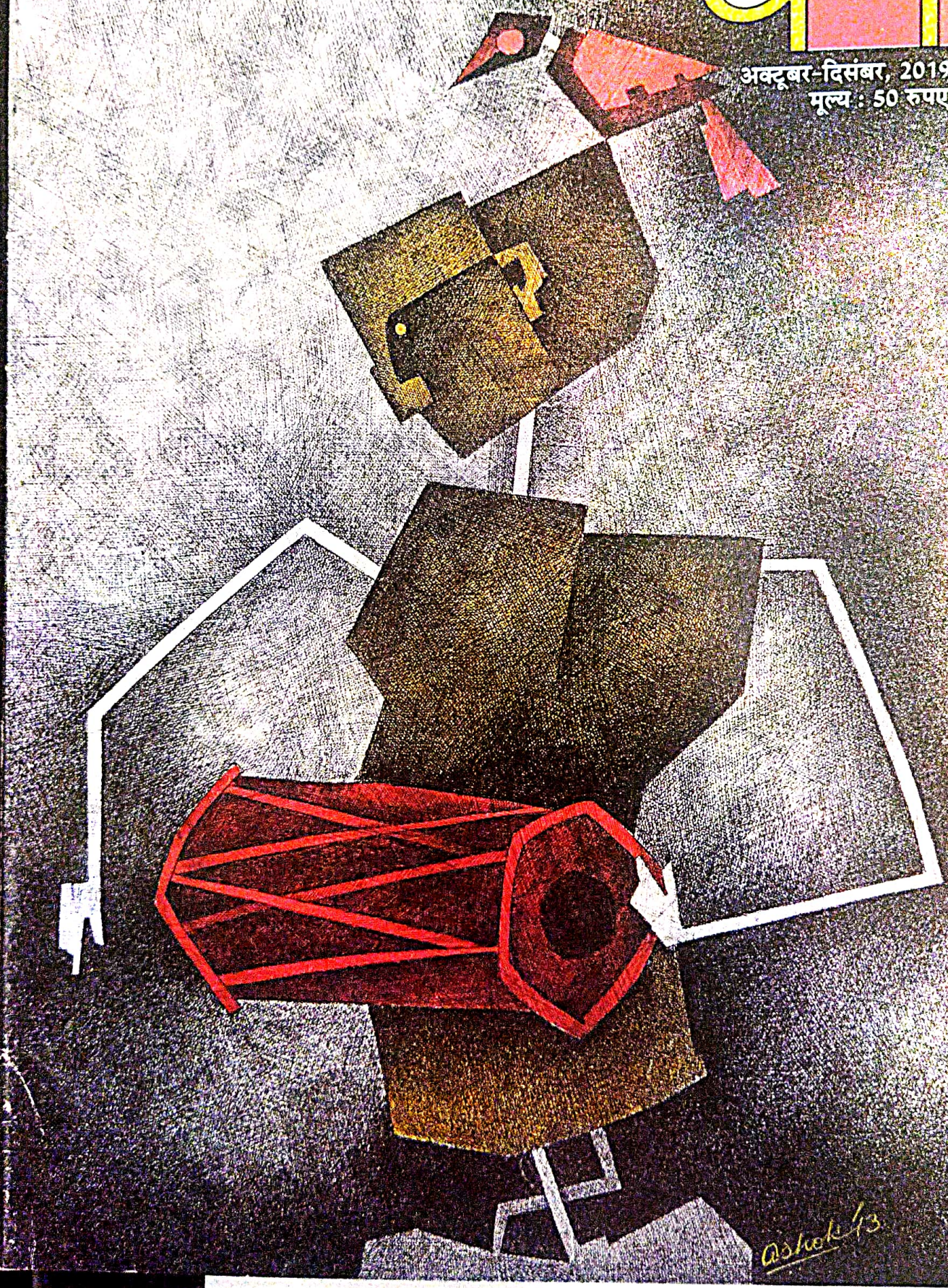

बया

साहित्य, संस्कृति और विचार का त्रैमासिक
पूर्णांक : 43 वर्ष : 14 अक्टूबर-दिसंबर, 2019

साहित्य, संस्कृति और समाज

विद्यापति विशेष

6.
मिथिला, हिंदी व मध्यकालीन भारत के इतिहास में विद्यापति
पंकज कुमार झा

18.
नचारी कथा
कुणाल

28.
विद्यापति मोर कतए गेलाह
कमलानन्द झा

डायरी

33.
बस्तर की डायरी
अशोक शाह

नागरनामा : 4

38.
अवध की सत्तावनी क्रान्ति और अमृतलाल नागर
बिपिन तिवारी

फ़िल्म

48.
भारतीय समान्तर सिनेमा के उद्‌भव के पचास साल
प्रमोद कुमार बर्णवाल

सा रे गा मा

■ बया की पाती

इस अंधेरे दौर में...

नफ़रत की दीवार मज़बूत करने की प्रक्रिया कुछ ज़्यादा ही तेज़ हो गई। इन्सान इन्सान के बीच भेद और विभाजन की राजनीति इस कदर ध्वंसात्मक और आक्रामक हो गई है, कि लगता ही नहीं कि हम एक सभ्य समाज में रह रहे हैं। हद तो यह है कि वो कपड़ों के रंग से लोगों को पहचानने और दंगाई बताने में ज़रा भी शर्मिंदित महसूस नहीं करते हैं। यहाँ युवाओं के पास रोज़गार नहीं है, छोटे-मझोले करोबारी तंग-तबाह हो अपने रोज़गार छोड़ने को मजबूर हो रहे हैं, मंदी और महँगाई ने आमजन की कमर तोड़ दी है, किसान आत्महत्या कर रहे हैं और वे हैं कि नागरिकता के पैमाने पर 'हिंदू राष्ट्र' बनाने की खूँखार तैयारी कर चुके हैं। वे अपने इरादों को लेकर इतने क्रूर और दमनात्मक रवैये अख़्तियार कर चुके हैं कि किसी भी तरह के मुख़ालफ़त को 'राष्ट्रद्रोह' मानते हुए उसे बर्बर तरीक़े से कुचलने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रहे हैं।

आज देश के लगभग तमाम महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालयों के छात्र बड़ी संख्या में सड़कों पर उतर आए हैं। जेएनयू, जामिया, जादवपुर यूनिवर्सिटी, गुवाहाटी यूनिवर्सिटी, हैदराबाद यूनिवर्सिटी, पटना यूनिवर्सिटी, बीएचयू, एएमयू, पंजाब यूनिवर्सिटी, पॉण्डिचेरी यूनिवर्सिटी, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज मुंबई, आईआईएमसी नई दिल्ली, आईआईटी मुंबई, आईआईटी कानपुर, आईआईटी नई दिल्ली, आईआईटी मद्रास, आईआईएम अहमदाबाद, आईआईएम बेंगलुरु, एम्स नई दिल्ली, मौलाना आज़ाद मेडिकल कॉलेज आदि जैसे संस्थानों के छात्र-शिक्षक विरोध कर रहे हैं।... समाजशास्त्री, लेखक, रंगकर्मी, फ़िल्मकार, पत्रकार, डॉक्टर, वकील, वैज्ञानिक, खिलाड़ी आदि हर तरह के बौद्धिक और सांस्कृतिक हल्के के बहुत सारे लोग इन छात्रों के साथ सड़कों पर निकल चले हैं। कुछ अपवाद छोड़ दें तो मुख्य रूप से इन सबके पीछे किसी की कोई निजी राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं है। विपक्षी राजनीति तो आज इस हद तक संकट में है या असफल अथवा संदिग्ध स्थिति में कि उसकी कोई प्रभावकारी भूमिका नज़र नहीं आती—इसलिए वह

57.
उजली सुबह तेरे खातिर आएगी—साँड़ की आँख
संदीप नाईक

पुस्तक-दीर्घा

59.
वात्सल्य प्रेम की अनूठी दास्तान : 'वे 47 दिन'
श्रीधरम

कहानी

78.
चक्रव्यूह
जयप्रकाश कर्दम

84.
डॉक्टर मिश्रा
संजीव बख्शी

87.
तितली
सुशांत सुप्रिय

89.
इंतज़ार
संजय कुमार सिंह

93.
रिटायरमेंट
मनोज कुमार 'शिव'

100.
गजोधर
गोविन्द उपाध्याय

सा रे गा मा

जहाँ-तहाँ घुसपैठ कर रही हो यह अलग बात... लेकिन प्रतिरोध का जो मुख्य उद्देश्य और स्वर है वह स्वतः स्फूर्त नागरिक-प्रतिरोध है और शांतिपूर्ण है। (छिटपुट हिंसात्मक घटनाएँ बाहरी तत्वों की कारस्तानी हो सकती हैं, पुलिसिया उकसावे की वजह से बचाव में अनियंत्रित हुई भीड़ का परिणाम अथवा कुछ सत्ता पोषित उपद्रवी तत्वों के हस्तक्षेप के कारण भी हुई हो सकती हैं) वस्तुतः मूल रूप में यह प्रतिरोध छात्रों का प्रतिरोध है और सोचने-समझनेवाले नागरिकों का। ख़ासकर ऐसे छात्रों और नागरिकों का जो सरकार के रवैये और उसके ताज़ा नागरिकता संशोधन कानून से असहमत हैं। जिनको लगता है कि इस कानून से सामाजिक सौहार्द्र टूटेगा, सामाजिक ताने-बाने गड़बड़ाएँगे और देश का हाल और बुरा होगा, ऐसे ही लोगों का यह नागरिक प्रतिरोध है। हमारा संविधान इस तरह के प्रतिरोध की हमें इजाज़त देता है। यह प्रतिरोध संविधान की मूल भावना और प्रस्तावना के भी अनुकूल है। लेकिन सरकार इस बात को नहीं समझती है या समझ कर भी नासमझ बन एक दमनकारी सत्ता की तरह लगातार दंडात्मक और अड़ियल रुख अपनाये हुए है।

आज स्थिति आपातकाल से भी जटिल, ज़्यादा भयानक और त्रासद हो गई है। फ़ासीवादी सत्ता का नंगा नाच हो रहा है। भीषण अंधेरगर्दी मची है चारों तरफ़। सत्ता से जुड़ी शक्तियाँ हर तरह के बलों का प्रयोग करती हुईं लगातार दमनात्मक, आक्रामक और क्रूरतापूर्ण कार्रवाई करती नज़र आ रही हैं। सत्ता के इशारे पर नाचनेवाली पुलिस आज डंडे मात्र नहीं फटकार रही है, निहत्थों की बेरहमी से पिटाई कर रही है। डंडे फटकारने, पानी की बौछार डालने और आँसू गैस के गोले फेंकने से काफ़ी आगे निकल कर हमारी यह पुलिस पत्थरबाजी करती है, अकेले-दुकेले छात्रों की क्रूरता से धुनाई करती है, पार्किंग में खड़ी बाइकें तोड़ती है, गोलियाँ चलाती है, छात्राओं को डराती-धमकाती और छात्रावासों से बाहर घसीट कर उसके साथ बदतमीजी करती है, पुस्तकालयों में घुसकर तोड़-फोड़ और पिटाई करती है और शौचालयों में घुसकर क्या-क्या करती है यह तो कहना भी मुश्किल है... हम इस पुलिसिये उत्पात और व्यवहार पर लज्जित और अपमानित महसूस करने के सिवाय कुछ नहीं कर सकते हैं। ऐसा नहीं है कि सारे पुलिसवाले ऐसे ही हैं। बहुत कम ऐसे मनचले और बिगड़े लोग हैं जो सरकारी-भक्त की तरह (आईटी सेल वाले भक्त की तरह) सत्ता की शह पाकर बदतमिजियाँ करते हैं लेकिन बदनाम पूरा पुलिस महकमा होता है। उससे भी दुखद बात कि इस तरह के आचरण वाले को रोकने या दंडित करने की नीयत या इच्छा-शक्ति वर्तमान सत्ता के भीतर नहीं है और इस वजह से स्थिति और ज़्यादा बिगड़ रही है। महिलाओं के साथ बर्बरतापूर्ण घटनाएँ बढ़ती ही जा रही हैं। हालत यह है कि 'बलात्कार की राजधानी' के रूप में हमारे बड़े शहर-नगर बदनाम हो रहे हैं। विश्व-समाज में भारत की किरकिरी हो रही है। लेकिन सरकार में बैठे लोग इस बात को स्वीकारने के लिए तैयार ही नहीं है।

हम एक ऐसे अंधेरे दौर से गुज़र रहे हैं जहाँ कानून-व्यवस्था कुछ ख़ास चिह्नित लोगों के लिए सुविधाजनक रह गई है। पहनावे के रंग, खान-पान के ढंग और आस्थाओं के प्रकार पर हमारी

103.
बेटी का बाप
केसरा राम अनु. **अमरीक सिंह दीप**

107.
खाल
रोअल्ड डाह्ल अनु. **सुशांत सुप्रिय**

कविताएँ

61-67.
विजेंद्र
अभिनव निरंजन
रुचि भल्ला
अरुण शीतांश
जगदीश सौरभ

ग़ज़लें
68-76.
ज़हीर कुरेशी
इन्दु श्रीवास्तव
केशव शरण
विनय मिश्र
देवेन्द्र आर्य

सा रे गा मा

पहचान और सुविधाएँ निर्धारित की जा रही हैं। हमारे टिफिन बॉक्स या हमारे फ्रिज में रखे सामान के आधार पर हमारी नागरिक-पहचान करने का समय है यह। अब हमारी आस्था या हमारे विश्वास तय करेंगे कि हम इस देश में रहने के काबिल हैं भी या नहीं।... रोज़मर्रे की परेशानियों में उलझे हम जैसों को साहब जिस तरह बैंकों की क़तार में खड़े कर देते हैं, महीने-महीने जीएसटी रिटर्न भरवाते हैं—उसी तरह हमें अब अपने को नागरिक साबित करने के लिए दादा-परदादा के दस्तावेज़ खंगालने में उलझाए रखना चाहते हैं, ताकि उन्हें दुनिया घुमने और अंबानी-अडानी टाइप लोगों के लिए विश्व बाज़ार में जगह बनाने के लिए आफ़ियत हो।

इस अंक में विद्यापति पर पंकज कुमार झा, कुणाल और कमलानंद झा के महत्त्वपूर्ण लेख विशेष सामग्री के रूप में दिए जा रहे हैं इस विश्वास के साथ कि पाठकों को विद्यापति को जानने-समझने के लिए कुछ नए सूत्र-संदर्भ मिलेंगे। इस विशेष सामग्री के कारण इस बार उपन्यास नहीं है। इनमें से कुणाल और कमलानंद झा के आलेख क्रमश: आगामी कुछ अंकों में भी जारी रहेंगे। बाज़ार, सत्ता, कला और मनुष्य के अंतर्संबंधों की गहराई को समझने की दृष्टि से विद्यापति पर प्रस्तुत सामग्री के साथ रोअल्ड डाह्ल की कहानी 'खाल' आपके लिए यादगार साबित हो सकती है।

अशोक शाह की 'बस्तर डायरी' भी पाठकों के लिए विशेष महत्त्व की एक अलहदा रचना साबित होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। इस तंत्र में आदिवासी समाज (साथ ही हमारे ग्रामीण समाज) को समझने वाले अधिकारी के भीतर अगर संवेदनशीलता हो तो आदिवासियों के साथ उसके संबंध में क्या अंतर आता है, इसे भी इस डायरी के मार्फ़त जाना जा सकता है। ख़ासकर वर्तमान समय में इसके निहितार्थ और बढ़ गए हैं।

चूँकि इस बार ग़ज़लों की संख्या कुछ ज़्यादा है इसलिए कविताएँ कुछ कम हैं और इसलिए कई कवियों की स्वीकृत रचनाएँ नहीं जा पाईं, इसका हमें खेद है।

अगला अंक पचहत्तर के पंकज बिष्ट पर केंद्रित हमारा एक बड़ा और यादगार विशेषांक रहेगा। कृपया अपनी प्रति पहले से सुरक्षित करवा लें!

सम्पादक
गौरीनाथ
कला सम्पादक
अशोक भौमिक
सम्पादन सहयोग
श्रीधरम, विपिन कुमार शर्मा
प्रबंध सहयोग : **नंदिनी**
मुख्य प्रबंधक : **दीपक कुमार दिनकर**
आवरण चित्र : **अशोक भौमिक**
भीतर के सभी चित्र : **वंदना तोमर**

संपादकीय संपर्क :
अंतिका प्रकाशन
सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन एक्सटेंशन-II
ग़ाज़ियाबाद-201005 (उ.प्र.)
ई-मेल : antika56@gmail.com
वेबसाइट : www.antikaprakashan.com
दूरभाष : 0120-2648212, 0-9871856053
मूल्य : एक प्रति : 50.00 रुपए
वार्षिक (व्यक्ति) : 300/- (रजि. डाक ख़र्च सहित)
वार्षिक (संस्था) : 350/- (रजि. डाक ख़र्च सहित)
आजीवन : 5,000/- विदेशों में (वार्षिक) : 50 डालर/30 पाउण्ड
'बया' से संबंधित सारे भुगतान चेक/ड्राफ्ट या मनीआर्डर **'अंतिका प्रकाशन'** के नाम करें।

संपादन-प्रकाशन
अवैतनिक-अव्यावसायिक।

'बया' से संबंधित सारे विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली रहेगा।

रचना में व्यक्त विचार से संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

संपादक-प्रकाशक-स्वामी-मुद्रक : गौरीनाथ के लिए सी-3/51, सादतपुर, दिल्ली-110094 से प्रकाशित और आर.के. ऑफसेट प्रोसेस, एम-28 नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 से मुद्रित।

अवध की सत्तावनी क्रान्ति और अमृतलाल नागर

बिपिन तिवारी
युवा आलोचक

एक दिन लखनऊ शहर के किसी कार्यक्रम में अमृतलाल नागर ने सूचना विभाग (उत्तर प्रदेश) के अधिकारी श्री भगवती शरण सिंह से अवध के उन क्षेत्रों को देखने की बात कही जहाँ पर ग़दर के दौरान विद्रोही घटनाएँ घटीं। यह बात 1957 की है। जब अमृतलाल नागर सत्तावनी क्रान्ति (ग़दर 1857) के इतिहास को केंद्र बनाकर एक उपन्यास लिखने के मंसूबे बांध रहे थे। श्री भगवती शरण सिंहजी ने इसे बहुत छोटा काम कहकर सूचना विभाग की तरफ़ से जीप और चालक का इंतजाम कर दिया। नागरजी को लिखित सामग्री संकलन के दौरान लग रहा था कि ग़दर की उन जगहों को देखना-समझना भी ज़रूरी है। नहीं तो उपन्यास में झिकोले रह जाएँगे। लिहाज़ा 4 जून, 1957 को नागरजी अवध के उन गाँवों-क़स्बों, शहरों की धूल छानने जीप से निकल पड़ते हैं। लोक स्मृतियों में रचे-बसे रह गए इतिहास को देख-सुनकर, समझकर तथ्यों से मिलान करते हैं। इससे इतिहासकारों की कमियों-कमज़ोरियों का पता चलता है। नागरजी ग़दर के पुरखों के फूल चुनने की यह यात्रा बाराबंकी से शुरू करते हैं। यहाँ से यात्रा शुरू करने का ख़ास मतलब है। नवाबगंज (जो अब बाराबंकी के नाम से जाना जाता है) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहीं से विद्रोहियों ने अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ चिनहट में मोर्चा बांधा था। नागरजी यहाँ सिर्फ़ अवध क्षेत्र के आस-पास के गाँवों-क़स्बों, शहरों की खाक छानते हैं। वैसे वे चाहते तो थे कि उनके पास यदि संसाधन होते, रोटी-पानी का ठीक जुगाड़ होता तो पूरे देश में घूम-घूमकर ग़दर के पुरखों के फूल चुनते। लेकिन घर-परिवार की जिम्मेदारी और आय का कोई स्थाई प्रबंध न होने से वे बहुत कम ही क्षेत्रों का दौरा कर सके। हरदोई, भिठौली, हैदरगढ़ नहीं जा पाये जिसका मलाल रहा। इसलिए इन जगहों के विद्रोहियों के बारे में प्रामाणिक संस्मरण नहीं मिलते।

अवध के ग़दर को लेकर उस समय तक बहुत से भ्रम बने हुए थे। यह भ्रम या गुत्थियाँ नागरजी के भी दिमाग़ में थीं। गाँव-जवार, क़स्बा-शहर घूमते हुए बहुत से भ्रम मिटे। लोगों ने अपनी स्मृतियों के सहारे अपने नायकों के बेहतरीन स्केच प्रस्तुत किये। इसलिए राय में तब्दीली हुई। इस बात को वह स्वीकार करते हैं। अवध में 1857 का आन्दोलन बहुत बाद यानी अप्रैल 1859 तक चला। यानी जब समूचे हिंदुस्तान में ग़दर का दमन किया जा चुका था तब भी अवध के किसान, मज़दूर, दस्तकार, राजे-महाराजे, जमींदार, हिंदू-मुसलमान संयुक्त रूप से अवध के लिए लड़ रहे थे। इस संघर्ष का ब्रिटिश सैनिकों ने अपने संस्मरणों और डायरियों में उल्लेख किया है। इसके साथ ही ब्रिटिश हुकूमत द्वारा लिखवाये गए गजेटियर में भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं। इन स्रोतों को आधार बनाकर ही अंग्रेज़ी इतिहासकारों ने अपने इतिहास ग्रंथ लिखे हैं। वहीं भारतीय इतिहासकारों ने भी इसी सामग्री का उपयोग किया है। इसमें ग़दर, कंपनी सरकार को लेकर विवेचना में तटस्थ दृष्टिकोण दिखाई नहीं पड़ता। इस बात से नागरजी दुःखी होते हैं। इसके पीछे की छिपी राजनीति का मुकम्मल जवाब वे 'गदर के फूल' संस्मरण कृति में देते हैं। नागरनामा की चौथी किस्त में अवध में ग़दर का स्वरूप क्या रहा, कौन सी नई शक्तियाँ इसमें उभरती हुई दिखाई पड़ती हैं, बेगम हज़रत महल को लेकर जो भ्रांतियाँ फैलाई गईं उनके पीछे का सच क्या है, किन कारणों से अवध के राजे-महराजे बेगम हज़रत महल के नेतृत्व में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ खड़े हुए और लड़े, हिंदू-मुस्लिम एकता का आधार क्या था, ग़दर में लखनऊ ने कैसा स्वरूप दिखाया आदि प्रश्नों को नागरजी के हवाले से समझने का प्रयास किया जाएगा।

लखनऊ का ग़दर

लखनऊ में ग़दर की शुरुआत तो मुकम्मल रूप से 30 मई 1857 को हुई। जिसके लिए कई महीनों से छावनियों और गाँवों में कुछ लोग कमल के फूल और चपातियाँ पहुँचा रहे थे। यह दोनों चीज़ें अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ बगावत का संकेत थीं। फ़ैज़ाबाद, मेरठ, लखनऊ, बैरकपुर आदि छावनियों के साथ-साथ गाँवों तक में यह चपातियाँ खासतौर से बंट चुकी थीं। यह चपातियाँ और कमल के फूल लखनऊ की छावनियों तक में पहुँच चुके थे। लखनऊ में ग़दर के स्वरूप को समझने के लिए ज़रूरी है कि पहले यह समझ लिया जाए कि अवध में विद्रोह से पहले की स्थितियाँ क्या रहीं? कौन से षडयंत्र कंपनी सरकार द्वारा किए गए या किये जा रहे थे, जनता में उन कामों के प्रति किस तरह की प्रतिक्रिया थी? 1849 में गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने कर्नल स्लीमैन को अवध का रेजीडेन्ट बनाकर भेजा। कर्नल स्लीमैन को इस बात का आदेश दिया गया कि वह नवाब के ख़िलाफ़ सबूत इकट्ठा कर करे। इसके पीछे लार्ड डलहौजी की योजना अवध को हड़पने की थी। रेजीडेन्ट स्लीमैन ने अवध के बादशाह की अनुमति के बग़ैर लाव लश्कर के साथ लखनऊ से चिनहट तक जाने की योजना बना ली और हारकर नवाब ने इसे स्वीकार किया। साथ ही इस यात्रा का खर्च भी उठाया। कर्नल स्लीमैन पूरे तीन महीने तक अवध के इलाक़ों में घूमता रहा और उन सब बातों को अपनी डायरी में लिखता रहा। यह डायरी उसकी मृत्यु के एक साल बाद यानी 1858 में 'ए जर्नी थ्रू दि किंगडम ऑफ अवध' नाम से प्रकाशित हुई। इसी डायरी के आधार पर स्लीमैन ने एक रिपोर्ट (13 अगस्त 1849) बनाकर गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी को भेज दी। रिपोर्ट का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है, *"...बादशाह में प्रशासकीय कार्यों की योग्यता बिल्कुल नहीं है। उसे इस बात का न कोई विचार है न चिंता कि राज्य में क्या हो रहा है। मेरे पत्रों का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह पूरा समय गवैयों और उन स्त्रियों के संसर्ग में, जिन्हें ये गवैये लाते हैं, व्यतीत करता है और सात-आठ घंटे मुख्य रूप से रज़ीउद्दौला ढाढ़ी के मकान में रहता है। यह व्यक्ति अभी कुछ ही समय पूर्व चार रुपए मासिक पर रंडियों के पीछे तबला बजाता था। ये गवैये कौम के डोम हैं जो हिंदुस्तान में निहायत गिरे हुए समझे जाते हैं, किंतु यहाँ ये लोग और ख़्वाजासराय मुल्क के असली बादशाह हैं और वर्तमान बादशाह*

के शासन तक रहेंगे। वज़ीर पूरी तरह इन्हीं लोगों पर आश्रित हैं और इन्हीं सबके हाथों में लाभ व प्रतिष्ठा के सारे पदों की बिक्री होती है...राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार के लिए आवश्यक है कि बादशाह से सारे अधिकार शाही परिषद को दिलाये जाएँ और स्वयं शाह नाम मात्र को बादशाह रहे और अपने घरेलू प्रबंध की देखभाल करता रहे। यदि यह न हो सके तो स्वयं अपने को अलग करके सत्ता युवराज को सौंप दे...इस समय प्रत्येक व्यक्ति अपना पद वज़ीरों, गवैयों और ख़्वाज़ासरायों से ख़रीद करता है और जिस समय चोट या बीमारी के कारण बेकार होता है उसी समय निकाल दिया जाता है...'' (रेज़ीडेंट स्लीमन की डायरी—ए जर्नी थ्रू द किंगडम ऑफ़ अवध अनुवाद डॉ. जगदेव सिंह, अवध साम्राज्य की अवसान गाथा अवध की लूट, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 2001, पृ. 43-44) इसी रिपोर्ट के आधार पर डलहौजी ने अवध को कंपनी में विलय करने की योजना को पूरा किया। फरवरी 1856 को आउट्रम ने बिना किसी रक्तपात के अवध का अधिग्रहण कर लिया। अवध का विलय हो जाने के बाद स्लीमैन ने इस नीति का विरोध किया। ''राज्यों का ज़ब्त करने की नीति इस देश में हमारा एक वर्ग बरत रहा है जिसे लार्ड डलहौजी और उनकी कौंसिल का समर्थन प्राप्त है। मेरी तथा भारत में अधिकतम एवं निष्पक्ष चिंतकों की सम्मति में यह पतनोन्मुखी प्रवृत्ति है। इस भूमि से जुड़े सभी लोग, चाहे वे मध्यम वर्ग के हों अथवा उच्च वर्ग के, नष्ट हो जाएँगे जबकि हमें ऐसे वर्ग को संरक्षण और पोषण देना चाहिए। हमें अवध को ज़ब्त करने अथवा अपने साम्राज्य में उसके विलीनीकरण का कोई अधिकार नहीं है। सन् 1837 की संधि के अनुसार हम उसका प्रबंध कर सकते हैं, किंतु उसकी सत्ता का अधिग्रहण नहीं कर सकते।'' (अवध की लूट, प्राक्कथन, पृ. XVI) यहाँ समझने की भूल नहीं करनी चाहिए कि स्लीमैन किसके पक्ष में खड़े होकर बात कह रहे हैं। स्लीमैन ने जो रिपोर्ट भेजी वह उनसे वैसी भेजनी की बात ही कही गई थी। इस रिपोर्ट में उसने अवध का शासन एक परिषद के हाथ में देने की जोरदार वकालत भी की थी। इस रिपोर्ट को देने के बाद स्लीमैन ने डलहौजी से अपने बेटे के लिए सेना में नौकरी देने की बात एक पत्र में लिखी। वह इस पत्र में भारत में अपने कामों का न केवल उल्लेख करता है बल्कि पूरी बेशर्मी के साथ उसका प्रतिदान भी चाहता था। इसलिए ज़रूरी हो जाता है कि तथ्यों की पड़ताल बारीकी से की जाए। अकादमिक तबक़े में भले ही स्लीमैन को नेकनीयत वाले अंग्रेज़ अफ़सर के रूप में क्यों न माना जाता रहा हो लेकिन जब डायरी के पृष्ठों और उसके द्वारा डलहौजी की हड़प नीति के ख़िलाफ़ लिखे गए पत्र को पढ़ते हैं तो दोनों में कोई संगति नहीं दिखती। 'अवध की लूट' नाम से डॉ. जगदेव सिंह ने स्लीमैन की डायरी का हिंदी में अनुवाद किया है। इसके प्राक्कथन में वह स्लीमैन को किसी भी रूप में अवध को हड़पने के लिए उसके द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट को जिम्मेदार नहीं मानते। वह तमिल साहित्य से एक कविता का उदाहरण देकर शासन व्यवस्था के कमज़ोर होने और उसके नष्ट होने की कहानी कहते हैं। वह नवाब वाज़िद अली शाह के बचपन आदि से जुड़े विभिन्न तथ्यों को 'इश्कनामा' और जेल डायरी 'हुज्ने अख़्तर' से उल्लेख करके उन्हें कामुक नवाब के रूप में ही सिद्ध करते हैं। यह काम तब किया गया है जब वाज़िद अली शाह के बारे में दूसरे तरह के तथ्य सामने आ चुके हैं। जहाँ उनके 'परीखाना' में बौद्धिक विकास के उपक्रम भी किये जाते थे। जिसका उल्लेख पत्रकार विलियम हॉवर्ड रसेल, विभिन्न जनरलों ने अपनी डायरियों और संस्मरणों में किया है। वैसे इस काम की शुरुआत उसी समय हो गई थी। रेजीडेन्ट स्लीमैन ने रिपोर्ट में जो विवरण प्रस्तुत किये हैं उनमें तथ्यों को बारीकी से छिपाया गया है। कंपनी संधियों का उल्लंघन कर अवध दरबार से समय-समय पर पैसे की माँग करती थी। वह सब क्या था? क्या उसके पीछे भी कोई नैतिक आधार था? इसके बारे में स्लीमन का रवैया बहुत अस्पष्ट रहता है। वह दबी ज़ुबान में विरोध करते हैं और मुखर रूप से अवध के नवाब पर रुपयों के लिए दबाव बनाते हैं। यह प्रवृत्ति अंग्रेज़ी सरकार की हमेशा से रही है। सवाल यहाँ अंग्रेज़ी हुकूमत की नीयत का है। वैसे पूरी दुनिया में अंग्रेज़ी हुकूमत के इतिहास से इस बात के पर्याप्त सुबूत मिल जाते हैं कि इस हुकूमत ने कहीं भी किसी तरह की नैतिकता नहीं बरती है। पंजाब में जलियाँवाला बाग़ हत्याकाण्ड(1919) में डायर ने जिस तरह से निहत्थे लोगों पर गोलियाँ चलवाई थीं उसके 100 साल बाद पोप आर्कबिशप जस्टिन वेल्बी ने उस हत्याकाण्ड के लिए माफी माँगी और ख़ुद को लज्जित महसूस किया। जबकि उस घटना के बाद डायर को इंग्लैण्ड में सम्मानित किया गया था। इससे अंग्रेज़ी हुकूमत की न्यायप्रियता का अंदाज़ा मिल जाता है। ऐसी न जाने कितनी घटनाएँ इतिहास में घट चुकी हैं जिनके पर्याप्त साक्ष्य आज उपलब्ध हैं।

1764 में वाजिद अली शाह के पर-पितामह नवाब शुजाउद्दौला बंगाल के नवाब मीर कासिम और मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय के साथ लड़ते हुए कंपनी सरकार से हार गए थे। यहीं से कंपनी का अवध दरबार में दखल बढ़ता गया। अवध और कंपनी के बीच समय-समय पर कई सारी संधियाँ हुईं जो मूल रूप से कंपनी के हित में ही थीं। अवध से इन संधियों के आधार पर कई करोड़ रुपया क़र्ज़ के नाम पर वसूला गया। कंपनी ने अलग-अलग मौक़ों पर जैसे नेपाल युद्ध के लिए 2.5 करोड़, प्रथम वर्मा युद्ध के लिए 1.5 करोड़ रुपए और प्रथम अफगान युद्ध में हार मिलने पर सैनिकों को भारत वापस लाने के लिए 10 लाख रुपए अवध से दबाव डालकर वसूले। (रोजी लिवेलन जोंस, द लॉस्ट किंग इन इंडिया, भारत में आख़िरी बादशाह वाज़िद अली शाह, अनुवाद सुधीर निगम, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2018, पृ. 82) कंपनी पर अवध का विलय होने के समय तक सारी बेईमानियाँ करने के बाद भी दो करोड़ रुपया कर्ज का निकल रहा था। यह एक बड़ी रकम थी। इस बड़ी रकम को न चुकाने के लिए अवध पर कोई न कोई आरोप लगाना ज़रूरी था। इसीलिए स्लीमैन को भेजा गया था।

नवाब वाज़िद अली शाह अंग्रेज़ी हुकूमत की इस चाल को समझ नहीं पाए। इसीलिए जब अवध को विलय करने की बात बताई गई तो नवाब को कंपनी के साथ अपने संबंधों पर दु:ख हुआ। कहा, ''क्या मैं इसके काबिल था? मेरा जुर्म क्या है?'' (भारत में आख़िरी बादशाह वाज़िद अली शाह, पृ. 109) दु:ख का कारण था कि नवाब ने कंपनी सरकार की समय-समय पर सभी जायज-नाजायज माँगों को पूरा किया था। नवाब को महल छोड़ देने के लिए मात्र तीन दिन का समय दिया गया। इसके साथ ही विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर पहले 15 लाख और बाद में 12 लाख रुपए वार्षिक पेंशन के रूप में स्वीकार करने के लिए कहा गया। लेकिन अंतिम दिन समाप्त होने के पहले ही कंपनी सरकार ने अवध का विलय कर लिया। नवाब से दरबार करने की शक्तियाँ छीन ली गईं। कंपनी सरकार अवध में अपनी हुकूमत चलाने लगी। ये सारी बातें नवाब वाजिद अली शाह के कलकत्ता पहुँचने के साथ ही बैरकपुर और दूसरी छावनियों तक पहुँची। नवाब गवर्नर जनरल से अवध के विलय पर पुन: विचार करने के लिए कलकत्ता प्रार्थना करने गए थे। अवध के नवाब की बेदखली का बैरकपुर छावनी के सैनिकों

पर विशेष प्रभाव पड़ा। उसका कारण था कि यहाँ के अधिकांश सैनिक अवध के इलाक़े से ही आते थे। सैनिकों के लिए नवाब के शासन का अलग मतलब था। वह किसी भी रूप में ज़्यादतियों के लिए नवाब को जिम्मेदार नहीं मानते थे। वह ऐसा शासक था जो धार्मिक रूप से उदार था। ऐसे नवाब को गद्दी से उतारना सैनिकों के लिए सह्य नहीं था। इसलिए अवध के सैनिकों का हुकूमत पर से भरोसा उठ गया।

इसी बीच बैरकपुर छावनी में कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी लगी होने की अफ़वाह फैली। सैनिकों से जब इस कारतूस की टोपी को मुँह से खोलकर इनफील्ड रायफलों में भरकर निशाना लगाने की बात कही गई तो सैनिकों ने अस्वीकार कर दिया। सैनिकों की पंक्ति से अलग होकर मंगल पाण्डेय ने इसके ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया। इससे यह बात पुख्ता हो गई कि फिरंगी भारतीयों को धर्म भ्रष्ट कर ईसाई बनाना चाहते हैं। इस अपराध के लिए मंगल पाण्डेय को फाँसी की सज़ा सुनाई गई। 8 अप्रैल, 1857 को फाँसी दी गई। मंगल पाण्डेय उत्तर प्रदेश के फ़ैज़ाबाद ज़िले के रहने वाले थे। सो इस घटना का असर समूचे अवध पर पड़ा। इस घटना से लखऊ की छावनियों के सैनिक भी दु:खी थे। जिसका इजहार बाद में हुआ। 2 मई, 1857 को मूसाबाग़ के सैनिक प्रशिक्षण केंद्र में 7वीं अवध इर्रेगुलर सेना के सामने चर्बी वाले कारतूस लाये गए। प्रशिक्षु सैनिकों से वे कारतूस लेने के लिए कहा गया। लेकिन जवानों ने नए कारतूस लेने से इनकार कर दिया। सैनिकों को समझाया-बुझाया गया। इसके बाद न मानने पर अनुशासन की सख्त कार्रवाई की गई। इसी समय एक सैनिक पंक्ति से अलग होकर चिल्लाया, ''दीन! फिरंगी के दीन से बचाओ।'' सिपाही को फौरन पकड़ लिया गया लेकिन देशी अफ़सरों ने सैनिकों को समझाने-बुझाने की बात कहकर मौक़ा टाल दिया। 7वीं इर्रेगुलर सेना के सिपाही इस अवज्ञा का परिणाम जानते थे। इसलिए हथियार और गोला-बारूद अपने हाथ में कर लिया। इसके साथ ही अपने से ऊँची मड़ियाव की 48वीं रेजीमेंट के भाइयों के नाम एक पत्र लिखा। लेकिन चिट्ठी मड़ियाँव छावनी के सैनिकों तक न पहुँचकर गद्दार सैनिक और सूबेदार के कारण हेनरी लारेंस के हाथों में पहुँच गई। उधर गुप्त संदेशों में 30 मई को ही एक साथ विद्रोह करने की बात सबके दिलों में चल रही थी। इसलिए साजिशन सैनिक अपनी स्वामिभक्ति अंग्रेज़ अफ़सरों के प्रति ज़्यादा दिखा रहे थे। लेकिन 30 मई के पहले ही मेरठ में (10 मई) सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और 11 मई को दिल्ली पहुँचकर बहादुर शाह जफर को अपना नेता चुन लिया।

सैनिकों के दिल्ली पहुँचने की ख़बरें पूरे देश में पहुँच रही थीं। इनका असर लखनऊ के अंग्रेज़ों पर दिख भी दिख रहा था। इसीलिए जब हेनरी लारेंस को 7वीं इर्रेगुलर सैनिकों द्वारा लिखी चिट्ठी हाथ लगी तो सबक़ सिखाने के लिए गोरी पल्टन के 1500 सवार और तोपखाना लेकर 7वीं इर्रेगुलर की छावनी को घेर लिया। तोपों से छावनी पर गोले बरसाने शुरू कर दिये। ख़ूब मार-काट मची। 120 सिपाही मैदान में डँटे रहे। अंग्रेज़ अफ़सरों ने सेना भंग कर दी और पकड़े गए 120 सिपाहियों में से कुछ को छोड़ दिया लेकिन 30 सिपाहियों को फाँसी और चालीस को आजन्म कड़ी क़ैद की सज़ा दी। लक्ष्मण टीले के पास मछली भवन के फाटक के सामने खुलेआम सैनिकों को फाँसी दी गई। सुबह फाँसी दिए गए विद्रोही की लाश दिन भर लटकी रहती और शाम को दूसरे विद्रोही को लटका दिया जाता। यह सब कुछ आम जनता में भय पैदा करने के लिए दुनिया को सभ्य बनाने का दावा करने वाले लोगों द्वारा किया जा रहा था। अवध की जनता में इन सब घटनाओं को लेकर तीव्र असंतोष पनप रहा था। अंग्रेज़ हुकूमत इन सब बातों को समझ भी रही थी। इसीलिए हेनरी लारेंस समय-समय पर दरबार करके शहर के लोगों को अपनी तरफ़ मिलाने का प्रयास कर रहा था।

12 मई को हेनरी लारेंस ने एक सभा में विद्रोहियों के प्रति अपमानजनक बातें कहीं। इसके लिए किसी ने कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की। अंग्रेज़ों को इस बात से पक्का यक़ीन हो गया कि लखनऊ उनके साथ है। वैसे एक योजना के तहत यह ख़ामोशी सैनिकों ने प्रदर्शित की थी। मौलवी अहमदुल्ला शाह ने अपने भयानक दौरों से लखनऊ के बच्चे-बच्चे को विद्रोह की रणनीति समझा दी थी। 30 मई से पहले किसी तरह की प्रतिक्रिया नहीं दिखानी है। इसके बाद भी अंग्रेज़ कहीं-न-कहीं डरे हुए थे। इस कारण अंग्रेज़ी हुकूमत ने 13वीं और 71वीं पलटन को नमक हलाल समझकर पहले ही मड़ियाँव भेज दिया। इसके पीछे सोच यह थी कि सैनिकों का शहर से कोई सम्पर्क नहीं रहेगा तो विद्रोह सफल नहीं हो पाएगा। अचानक 30 मई को ठीक रात के 9 बजे की तोप छूटी और उसके साथ ही 71वीं नम्बर पल्टन की सभी बंदूक़ें एक साथ चल पड़ीं। लखनऊ पहले से ही इसके लिए तैयार था। लोग अपने घरों की दीवारों में छेद बनाकर बंदूक़ की नली फिट किए बस आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे। सम्राट बहादुरशाह जफर का सुनहले तारों से कढ़ा हरे रंग का झण्डा हर जगह लहरा रहा था और उनके नाम के ही नारे लगाये जा रहे थे। अब जनता अपने घरों के सामान्य हथियारों को लेकर मड़ियाँव छावनी के अपने भाइयों की मदद करने के लिए चली आ रही थी। अंग्रेज़ों ने पूरे शहर में मार्शल लॉ लगा दिया। जिस किसी को भी मड़ियाँव, मूसाबाग़, हुसैनाबाद आदि की बातें करते पाया गया उसे फाँसी दे दी गई। 11 से 15 जून के भीतर हज़ारों लोगों को फाँसी पर लटकाया गया। ऐसा अंग्रेज़ पत्रकार रसेल का मानना है।

30 मई से लखनऊ में जो विद्रोह शुरू हुआ, वह सीतापुर, मुहम्मदी, औरंगाबाद, सेकरौरा, गोंडा, बहराइच, मल्लापुर, फ़ैज़ाबाद, सुल्तानपुर, सलोन, बेगमगंज, दरियाबाद में फैल गया। 29 जून को स्वदेशी सेनाएँ लखनऊ से छः मील दूर चिनहट में आकर बस गईं। स्वदेशी सेनाओं के कमांडर बरकत अहमद थे। चिनहट में देशी सेनाओं से अंग्रेज़ों को करारी शिकस्त मिली। अंग्रेज़ और अंग्रेज़ परस्त भारतीय सैनिक चार तोपें और बहुत सारा गोला-बारूद छोड़कर भाग खड़े हुए। चिनहट की जीत से दौलतख़ाना के इर्रेगुलर पल्टनों तथा इमामबाड़े की मिलटरी पुलिस ने विद्रोह कर गोरे अफ़सरों का माल-असबाब लूट लिया। कोठी फरहत बख्श, छतर मंजिल, बादशाह बाग़, शाद मंज़िल, मुबारक़ मंज़िल, कोठी रसदख़ाना, हज़रतगंज, दिलकुशा, मुहम्मद बाग़, आसफी इमामबाड़ा पर भारतीय सैनिकों ने क़ब्ज़ा कर लिया। रेजीडेन्सी को चारों तरफ़ से घेर लिया गया। पड़ोस के घरों की दीवारों में छेद करके सिपाही अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ गोलियाँ बरसाने लगे। समूचे लखनऊ में अंग्रेज़ लोग बस दो बिल्डिंगों-रेजीडेन्सी और मच्छी भवन-तक ही सीमित हो गए थे। इसलिए हेनरी लारेंस ने एक चाल के साथ रात के अंधेरे में मच्छी भवन से अंग्रेज़ों को वहाँ का गोला-बारूद उड़ाकर रेजीडेन्सी आने की बात एक जासूस से कहलवायी। विद्रोही सैनिक हेनरी लारेंस की इस चाल को समझ नहीं सके। लिहाजा मच्छी भवन में धमाका होने पर ही पता चल सका कि अंग्रेज़ यहाँ से निकल गए हैं। रेजीडेन्सी पर अहमदुल्ला शाह की कमान थी। जिनके हमले से ही हेनरी लारेंस ज़ख़्मी होकर 4 जुलाई 1857 को मारा गया था। इस बीच विद्रोही सैनिकों ने लखनऊ की बहुत सी जगहों को लूटा।

चिनहट की विजय के बाद स्वदेशी दल के सेनानायकों ने

एक पंचायत बुलाई और राज-काज चलाने के लिए तय किया कि शाही वंश के व्यक्ति का राजतिलक करना चाहिए। सेनानायकों की पंचायत ने शाही व्यक्ति की ताजपोशी होने तक शहर के प्रबंध के लिए अलीरज़ा कोतवाल और मीर नादिर हुसैन को नियुक्त किया। और इन दोनों की निगरानी के लिए मुहम्मद कासिम खाँ को नियुक्त किया। सैनिक पंचायत ने शासन प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। पंचायत में जनरल बरकत अहमद, उमराव सिंह, जयपाल सिंह, रघुनाथ सिंह, शहाबुद्दीन और धमंडी सिंह प्रमुख व्यक्ति थे। अंतत: विचार-विमर्श के बाद बिरजीस कदर को अवध का नवाब नियुक्त किया गया। बिरजीस कदर की नियुक्ति को दूसरी बेगमों ने भी स्वीकार किया। बेगम हजरत महल को नवाब के बालिग होने तक संरक्षिका नियुक्त किया गया। बेगम ने सिपाहियों के वेतन 6 के मुक़ाबले 12 रुपए महीने कर दिए। इसके साथ ही बहादुरशाह जफर की अधीनता स्वीकार करने का फरमान जारी किया और अनके बहुमूल्य भेंटों सहित एक व्यक्ति को नवाब बिरजीस कदर का प्रतिनिधि बनाकर दिल्ली दरबार भेजा। नवाब बिरजीस कदर की ओर से बेगम ने घोषणा की, ''ख़ल्क खुदा की, मुल्क बादशाह दिल्ली का हुक्म मिर्जा बिरजीस कदर बहादुर का हर ख़ास ओ आम को इत्तिला दी जाती है कि उस पाक परवर दिगार ने जो हम सबका खालिक है, उसने हमारी हुकूमत लौटा दी है—अब जबकि हुकूमत का निजाम हमारे हाथ में है—हुक्म दिया जाता है कि कोई शख़्स फ़साद या लूट नहीं करेगा—ख़िलाफ़ वर्जी करने वाले हाकिमे शहर की रू से सज़ा के मुस्तहक होंगे।'' (1857 : महाक्रांति या महाविद्रोह, सम्पादक प्रदीप सक्सेना, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ. 472) यहीं से बेगम हज़रत महल के जीवन का नज़रिया ही बदल गया। अब वह घोड़े पर बैठकर अलग-अलग जगहों पर जाकर लोगों से मिलती और मोर्चे पर लड़ती भी हैं। धीरे-धीरे बेगम अवध के संघर्ष का प्रतीक बन जाती हैं। बेगम ने अपने साथ जनता के हर वर्ग को जोड़ा। किसान-मज़दूर, दस्तकार, राजे-महराजे, जमींदार-महाजन सभी शामिल थे। 18 मार्च तक बेगम अंग्रेज़ों से लखनऊ में लोहा लेती रहीं। यहाँ तक आते-आते लखनऊ के सभी मोर्चे अंग्रेज़ी सेना ने फतह कर लिए थे। लेकिन लखनऊ के सआदतगंज में मौलवी 21 मार्च 1858 तक लड़ते रहे। यही लखनऊ की अंतिम लड़ाई थी। इसके बाद अवध के दूसरे क्षेत्रों से लखनऊ को आज़ाद कराने के लिए संघर्ष अप्रैल 1859 तक किये जाते रहे। ग़दर में जो मिशाल लखनऊ ने पेश की वैसी दूसरी नहीं मिलती। यहाँ संघर्ष साझा था। इस तथ्य को ब्रिटिश इतिहासकारों ने भी रेखांकित किया है। अवध के ग़दर पर किसी भी तरह से सैनिक विद्रोह का आरोप नहीं लगा सकते। नहीं तो अंग्रेज़ समर्थक इतिहासकारों के मत अपने आप से खारिज हो जाएँगे।

इतिहास का लोकवादी दृष्टिकोण

अवध के ग़दर को लेकर इतिहासकारों में बहुत विवाद रहा है। ग़दर के सौ साल पूरे होने तक स्रोत सामग्री के रूप में अंग्रेज़ी सैनिकों द्वारा लिखी गईं डायरियाँ, बंगाली क्लर्कों के संस्मरण, ब्रिटिश पत्रकारों की रिपोर्टें या फिर कुछ ब्रिटिश इतिहासकारों के इतिहास ग्रंथ उपलब्ध थे। भारतीय इतिहासकारों ने स्रोत सामग्री के रूप में उपर्युक्त स्रोतों का ही ज़्यादा उपयोग किया। इस स्रोत सामग्री में तटस्थता कम है। यानी ब्रिटिश सरकार की कारगुजारियों को सही तरह से रेखांकित नहीं किया गया है। लिहाजा निष्कर्ष ब्रिटिश सरकार के पक्ष में जाते हैं। इन इतिहासकारों ने ऐसी स्रोत सामग्री से अपने को बचाया है जहाँ अंग्रेज़ी सरकार के बारे में कुछ नकारात्मक टिप्पणियाँ मिलती हैं। भारतीय इतिहासकार आर. सी. मजूमदार के इतिहास ग्रंथ 'द सिपॉय म्यूटिनी एंड द रिवोल्ट ऑफ 1857' में इस बात को नागरजी ख़ास तौर से रेखांकित करते हैं। इसके पीछे के कारणों पर जाएँ तो पता चलता है कि यह इतिहास लेखन अभिजनवादी शैली का है। जहाँ उपर्युक्त स्रोतों के साथ-साथ, अभिलेखागार और गजेटियर में लिखी बातों को ही प्रामाणिक तथ्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। अंग्रेज़ या कोई भी सत्ता अपने हिसाब से ही गजेटियर आदि लिखवाती है। ऐसे में घटनाओं की सच्चाई छिप जाती है। इसीलिए नागरजी लोक में जाकर तथ्यों की खोजबीन करते हैं। उनका मानना है कि अकादमिक तबक़ों में लोक को कम महत्त्व क्यों न दिया जाता हो पर वहाँ उपस्थित इतिहास में सच्चाई के कई दूसरे पहलू उपलब्ध हैं। नागरजी को ग़दर नायकों के इतिहास खंगालने पर ऐसे ही तथ्य मिलते हैं। अंग्रेज़ों की नज़र में भले ही ऐसे नायक विद्रोही हैं लेकिन जनता की नज़र में इनकी बड़ी अहमियत है। ऐसे ही नायक हैं—राजा बलभद्र सिंह, राणा वेणीमाधव, राजा देवीबख्श सिंह, मौलवी अहमदुल्ला शाह आदि। कई बार कुछ तथ्य ऐसे भी मिलते हैं जिसके कारण इतिहास में प्रचलित नायकों का दर्जा नायक से हट जाता है। नागरजी इस बात की बारीकी से पड़ताल करते हैं। ऐसे ही नायक हैं मितौली के राजा लोने सिंह, महमूदाबाद के राजा नवाब अली खाँ। यह पहले अंग्रेज़ों को संरक्षण देते हैं और बाद में बेगम हज़रत महल के दबाव में आकर अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ हो जाते हैं। मितौली के राजा लोने सिंह पहले अंग्रेज़ महिलाओं, बच्चों को अपने क़िले में शरण देते हैं और दबाव पड़ने पर अवध दरबार में अंग्रेज़ महिलाओं, बच्चों को भेज देते हैं। लखनऊ के रास्ते में ही विद्रोही सैनिक अंग्रेज़ महिलाओं, बच्चों की हत्या कर देते हैं। एक महिला बच जाती है। बाद में उसी की गवाही पर राजा लोने सिंह को सज़ा दी जाती है। अंग्रेज़ी हुकूमत की नज़र में वे ग़दरी माने जाते हैं। जबकि वास्तविकता इसके विपरीत थी। जनता इन्हें गद्दार मानती है। नागरजी के कारण ही ऐसे नायकों की सचाई पता चल सकी।

नागरजी अवध के विभिन्न जगहों के लोगों से बेगम हज़रत महल के बारे में राय लेते हैं। इसके पीछे नागरजी के दिमाग़ में कहीं-न-कहीं अंग्रेज़ी सरकार द्वारा बनाई गई, प्रचारित की गईं गुत्थियाँ मौजूद थीं। वह इस बात की तस्दीक जनता से करना चाहते हैं। पूछने पर लोग बेगम के साहस और संघर्ष की तारीफ़ करते हैं। एक आदमी तो यहाँ तक कहता है, ''जस अउरत क सील धरम होत है वइसी रहैं।'' (गदर के फूल, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ. 42) इससे पता चलता है कि बेगम का व्यक्तित्व कैसा था? बेगम अवध के लिए उनकी माँ के समान थीं। कई सारे राजाओं ने जो बेगम के साथ थे उन्होंने इस बात को अंग्रेज़ी हुकूमत के सामने स्वीकार किया। जनता का बेगम के धर्म और परिवार के इतिहास से कोई मतलब नहीं है।

दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ी सरकार और उसके इतिहासकार बेगम को लेकर बहुत निम्न स्तर की बातें प्रचारित-प्रसारित करते हैं। यह बात सही है कि बेगम कुट्टन अम्मन और अमामन के द्वारा वाजिद अली शाह के 'परीखाना' में लाई गई थीं। वहाँ उनको संगीत-नृत्य की शिक्षा दी गई। नवाब वाजिद अली शाह ने इन्हें प्रेम-पत्रियों में 'ज़नेखानगी' कहा है। नवाब ने इस नई परी का नाम 'महक परी' रखा। वही 'महक परी' बाद में नवाब साहब के बच्चे की माँ बनी। नवाब वाजिद अली शाह ने उनको कई सारी पदवियाँ और सम्मान भेंट किए। नवाब वाजिद अली शाह के लखनऊ छोड़ने के बाद बेगम ने राजा-महराजाओं की सलाह

से बिरजीस कदर की संरक्षिका बनकर अवध का नेतृत्व किया। उनकी नेतृत्व क्षमता से प्रभावित होने वालों में अवध की जनता है, अंग्रेज पत्रकार विलियम हावर्ड रसेल हैं, रेजीडेंट कर्नल स्लीमेन हैं, मोलिसन हैं, इतिहासकार के आदि हैं। पत्रकार रसेल ने डायरी में बेगम की नेतृत्व क्षमता और बौद्धिकता की तारीफ की है। यानी ऐतिहासिक स्रोत और लोक में प्रचलित मान्यताएँ दोनों में कोई अंतर नहीं है। लेकिन कुछेक अंग्रेज भक्ति वाले इतिहास-ग्रंथों में इसके उलट तथ्य मिलते हैं। ऐसे ही दूसरे नायकों की सचाई भी नागरजी लोक में खोजते हैं। ऐसी ही एक कहानी फ़ैज़ाबाद के राजा मान सिंह की है। इतिहासकारों ने माना है कि मान सिंह विद्रोहियों के साथ पहले मिले और बाद में अंग्रेज़ों के साथ जुड़ गए। लेकिन लोक में राजा मान सिंह को गद्दार ही मान लिया गया है। लोकगीत में भी मान सिंह को लेकर यह बात प्रचलित है. 'अल्ली मिले मान सिंह मिलिगे मिले सुदर्सन काना।' जानकारी करने पर एक लोगों ने बताया कि जब सब राजाओं की मीटिंग हुई तो रणनीति के तहत राजा मान सिंह को अंग्रेज़ों के साथ मिले रहने की बात सभी ने कही थी। इसके पीछे का सोच यह था कि अगर पराजित हुए तो कम से कम राजा मान सिंह सभी राजाओं के परिवारों की देखभाल कर सकेंगे। रणनीतिक रूप से देखें तो यह सही है। लेकिन लोक में राजा मान सिंह, राजा लोने सिंह वह सम्मान नहीं पा सकते जो दूसरे नायकों को मिला हुआ है। लोक में राणा वेणीमाधव सिंह, राजा देवीबख्श सिंह के लिए कवित्त तक मिलते हैं। इसके प्रमाण में कुछ कवित्त आपके सामने प्रस्तुत है—

अवध में राना भयो मरदाना
पहिली लड़ाई भई बक्सर माँ सेमरी के मैदाना
हुआं से जाय पुरवा में जीत्यो तबै लाट घबड़ाना...
(पं. कृष्णशंकर शुक्ल 'कृष्ण' रचित बेनीमाधव बावनी से)
(राजा बलभद्र सिंह के लिए)
भाजि गए इलंगी झिलंगी।
भाजि गए गज के असवारा॥
हरदत्त कहैं हम खेत लड़ब।
उड़ जाय लुकान नदी के किनारा॥
एक जीवत हैं बलभद्र बली।
जिन जाय झपटि अंगरेज़ को मारा॥ (जंगनामा)"
(गदर के फूल, क्रमशः पृ. 144, 93)
चहलारी कौ नरेस निजदल मो सलाह कीन,
तोप को पसारा जो समीपै दागि दीना है।
तेगन से मारि मारि तोपन को छीन लेत,
गोरन को काटि काटि गीधन को दीना है।
लंदन अंग्रेज़ तहाँ कंपनी की फौज बीच,
मारे तरवारिन के कीच करि दीना है।
बेटा श्रीपाल को अलेंद्रा बलभद्र सिंह
साका रैकवारी बीच बांका बाँधि दीना है।"

(अवध का मुक्ति संग्राम-अखिलेश मिश्र, सम्पादक : वंदना मिश्र, परिशिष्टः चार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013 पृ. 145)

ऐसे न जाने कितने लोकगीत अवध की जनता गाती है। ऐसे बहुत से श्रेष्ट कवित्त लेखक हैं जो अपनी प्रतिभा के दम पर लोगों के कंठहार बने हुए हैं। नागरजी इन सबका उल्लेख कर इतिहासकारों की मान्यताओं में रह गई तथ्यात्मक कमियों की तरफ़ इशारा करते हैं।

अंग्रेज़ी हुकूमत के इतिहास को उठाकर देखा जाए तो पता चलेगा कि अंग्रेज़ों ने जहाँ भी युद्ध में विजय पाई वहाँ की महिलाओं, बच्चों के साथ बुरा बर्ताव किया है। भारत में ग़दर के बाद जिन लोगों ने अंग्रेज़ी सरकार के ख़िलाफ़ विद्रोहियों का साथ दिया था उनके परिवारों के साथ बुरे बर्ताव किए गए। उनके गढ़ों को ढहा दिया गया और रियासतों को अंग्रेज़ समर्थक लोगों को दे दिया गया। विद्रोहियों को बुरी तरह से फाँसी दी गई। जिसकी कहानी आगे आपको पढ़ने को मिलेगी। लोक में कई बार प्रचलित मान्यताओं का कोई वास्तविक आधार नहीं होता है लेकिन वह कैसे और किन कारणों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती जाती हैं, इस पर भी ग़ौर करना चाहिए। लेकिन कई बार लोक में प्रचलित मान्यताओं का आधार बहुत वैज्ञानिक होता है। ग़दर के दौरान जिन लोगों ने अंग्रेज़ी हुकूमत का साथ दिया उनको अंग्रेज़ी सरकार से जागीरें और बहुत से सम्मान मिले। लेकिन जनता की नज़र में ऐसे लोग बस 'गद्दार' हैं। नागरजी को बहराइच का दौरा करते हुए इस बात की जानकारी लोगों से मिली। अंग्रेज़ों से जमींदारी पाने वाले कुटुम्ब को गाँव वाले 'गद्दारन का घर' कहते हैं। यानी जनता कभी भी ऐसे लोगों को अपना नायक नहीं मानती जो लोग अपने स्वार्थों के कारण देश के साथ धोखा करते हैं।

हिंदू-मुस्लिम एकता की बुनियाद

वैसे तो अंग्रेज़ी सरकार द्वारा समय-समय पर यही प्रचारित किया गया कि हिंदू-मुसलमानों के बीच किसी तरह की एकता संभव नहीं है। इसके लिए इतिहास की कुछ मनगढ़ंत कहानियाँ भी बुनी गईं। इन कहानियों में ख़ास तरह की घटनाओं और व्यक्तियों को आधार बनाया गया। जैसे शिवाजी को मुस्लिम समाज के ख़िलाफ़ काम करने वाले शासक के रूप में तो वहीं औरंगजेब को हिंदुओं के हत्यारे के रूप में रखा जाता था। इन दोनों शासकों को कुछ कामों के कारण साम्प्रदायिक माना जा सकता है। लेकिन व्यापक दृष्टि से विचार करने पर कुछ दूसरे तथ्य मिलते हैं। मसलन शिवाजी ने अपना सेनापति एक मुस्लिम दर्यादरंग को बनाया था और औरंगजेब ने असम के 'कामाख्या', उज्जैन के 'महाकाल' मंदिर का जीर्णोद्धार करने के लिए आर्थिक मदद की। लेकिन इन तथ्यों की बात अंग्रेज़ नहीं करते।

ग़दर के दौरान हिंदू-मुस्लिम एकता के सवाल पर जब विचार करते हैं तो चौंकाने वाले तथ्य मिलते हैं। यहाँ पर एक तरफ़ मेरठ के विद्रोही सैनिक दिल्ली पहुँचकर बहादुर शाह ज़फ़र को अपना नेता स्वीकार करते हैं तो अवध में हिंदू-मुस्लिम राजे-रजवाड़े, जमींदार-महाजन नवाब बिरजीस कदर को अपना नेता चुनते हैं। इन सबके लिए बहादुर शाह ज़फ़र और बिरजीस क़दर एक मुसलमान से ऊपर हैं। वह अपने मुल्क में रचे-बसे अपने हैं जबकि अंग्रेज़ पराए। अवध के लोग हिंदू-मुस्लिम एकता की नायाब मिसालें प्रस्तुत करते हैं। 1853 में अयोध्या में हनुमान गढ़ी को लेकर हिंदू-मुसलमानों में विवाद हो गया। इसमें तीन सौ से चार सौ के आस-पास लोग मारे गाये। इस घटना के चार साल बाद ग़दर छिड़ने पर हिंदू-मुस्लिम समुदाय के लोग अपने मतभेदों को भुलाकर अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ संघर्ष करते हैं। इस एकता को बनाने के प्रयास हनुमान गढ़ी (अयोध्या) के बाबा रामचरण दास और मौलवी अमीर अली ने किये। मौलवी अमीर अली एक सभा में मुस्लिम भाइयों से श्रीराम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद हिंदुओं को देने की बात मनवा लेते हैं। "भाइयो, बहादुर हिंदू हमारी सल्तनत को हिंद में मजबूत करने के लिए लड़ रहे हैं। इनके दिल पर काबू पाने और इनके अहसानों का बोझ अपने सिर से उतार देने के लिए हमारा फ़र्ज़

है कि अयोध्या की श्रीराम जन्मभूमि जिसे हम बाबरी मस्जिद कहते हैं, जो हक़ीक़त में रामचन्द्रजी की जन्मभूमि के मंदिर को ज़मींदोज़ करके शाहंशाहे-हिंद बादशाह बाबर ने बनवाई थी, हिंदुओं को वापस दे दें। इसमें हिंदू-मुस्लिम इत्तदाह की जड़ इतनी मजबूत हो जाएगी कि जिसे अंग्रेज़ों के बाप भी नहीं उखाड़ सकेंगे।'' (गदर के फूल, पृ. 67) यह घटना नागरजी को अयोध्या में सुनने को मिली। इससे पता चलता है कि ग़दर के दौरान हिंदू-मुस्लिम जनता में अंग्रेज़ों के प्रति किस तरह की एका थी। लेकिन एका की यह बात अंग्रेज़ी सरकार को खटक गई। इसी डर के मारे हिंदू-मुस्लिम एका को तोड़ने के लिए फ़ैज़ाबाद में दोनों नेताओं को कुबेर टीले पर एक साथ इमली के पेड़ पर फाँसी दी गई। लेकिन जनता ने इन दोनों को अपने सर-आँखों पर बैठाया। जनता 1930 तक फाँसी वाले उस इमली के पेड़ को पूजती रही। लेकिन बाद में उसे कटवा दिया गया। अंग्रेज़ों के लाख प्रयास करने के बाद भी 1857 से लेकर आज़ादी के आन्दोलन तक में एक हद तक इस एका को देखा समझा जा सकता है। अंग्रेज़ी हुकूमत ने इस एका को तोड़ने के लिए कुछ ग़लत तरह के तथ्यों का भी जनता के सामने खुलासा किया। 12 मई, 1857 को हेनरी लारेंस ने लखनऊ की सेना और जनता से (हिंदी-उर्दू में) भाषण में कहा, ''हिंदू जनता जानती होगी कि औरंगजेब के शासनकाल में हिंदुओं के मंदिर भ्रष्ट किए गए, हिंदू अबलाओं का सतीत्व नष्ट किया गया और लोगों को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया गया। इसी प्रकार शिवाजी के राज्य में मुसलमानों पर, निरीह जनता पर अनेक अत्याचार हुए। दोनों की भलाई इसी में है कि वे अंग्रेज़ राज्य के प्रति स्वामिभक्त बने रहें...'' (अवध का मुक्ति संग्राम, पृ. 43) इसके ख़िलाफ़ एक सैनिक ने सभा समाप्त होने पर कहा, ''गो-भक्षक हमें हितोपदेश करने चले हैं, हम इतने अबोध नहीं हैं। किसे नहीं मालूम कि बादशाह आलमगीर के राज्य में भी गो-हत्या पर प्रतिबंध लगा हुआ था।'' (अवध का मुक्ति संग्राम, पृ. 43) ग़ौर करने वाली बात यह भी है कि एकता की यह बुनियाद सिर्फ़ ग़दर के दौरान नहीं बनी है। नवाब वाजिद अली शाह के समय को इस मानक पर यदि देखा जाए तो कुछ चौंकाने वाले तथ्य मिलते हैं। नवाब 'रहस' में कृष्ण का अभिनय करते हैं, नाटकों की रचना करते हैं। लेकिन एक घटना अयोध्या में 1853 में ऐसी भी हुई जिसके कारण उन्होंने घटना के मुख्य सूत्रधार गुलाम हुसैन को सबक़ सिखाने के लिए सेना भेजी थी। नवाब ने उसे जिम्मेदार दुष्ट खलनायक तक कहा। ये तथ्य 2014 में प्रकाशित रोजी लिवेलन जोंस की किताब 'द लास्ट किंग इन इंडिया वाजिद अली शाह' में देखे जा सकते हैं। इस घटना में तीन सौ से चार सौ लोग मारे गए। इस घटना से नवाब को दु:ख भी हुआ। लेकिन इस एक घटना से नवाब को साम्प्रदायिक नहीं माना जा सकता। यह बात नागरजी को लोगों से पता चली। एक और उदाहरण मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। वह है बेगम हज़रत महल का। बेगम हज़रत महल जब लखनऊ से निकलीं तो सबसे पहले जिन लोगों से मदद माँगी उनमें बहुसंख्या हिंदू राजाओं की थी। अंत तक जिन लोगों ने बेगम साहिबा का साथ दिया उसमें भी ज़्यादा संख्या हिंदू राजाओं की थी। इसलिए हिंदू-मुस्लिम एकता के सवाल का अवध में एक अलग अर्थ है। गाँव के लोगों के साथ बातचीत करते हुए लोगों में बेगम को लेकर कहीं भी मुस्लिम होने की बात किसी ने नहीं कही। इसका मतलब यह है कि ग़दर ने हिंदू-मुस्लिम एकता की बुनियाद को और मजबूत किया जिसके लिए अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रति शुक्रगुज़ार होना चाहिए। यही एकता समूचे हिंदुस्तान में देखने को मिली।

बेगम हज़रत महल : सांगठनिक और बौद्धिक क्षमता

बेगम हज़रत महल की सांगठनिक क्षमता का परिचय नवाब वाजिदअली शाह के कलकत्ता (मटियाबुर्ज) चले जाने के बाद मिलता है। इस बात के प्रमाण उस समय के कुछ पत्रों में मिल जाते हैं। उनकी सांगठनिक क्षमता से अंग्रेज़ी सरकार तक आश्चर्यचकित हुई। सैदा बेगम नवाब वाजिदअली शाह को बेगम हजरत महल के संबंध में एक पत्र में लिखती हैं, ''आपके जाने के एक साल बाद वह-वह बलवाए आम हुए, वह-वह मुसीबतें आईं जो खुदा दुश्मन को भी नसीब न करे। हज़रत महल ने ऐसी बहादुरी दिखाई कि दुश्मन के मुँह फिर गए, बड़ी ज़ोरदार औरत निकली, सुल्ताने आलम का नाम कर दिया कि जिसकी औरत ऐसा मरादानावार मुक़ाबला कर सकती है तो मर्द कैसा बहादुर और शुजा होगा, जब ही ख़ौफ़ से हुजूर को आँखों-आँखों में रखा...'' (अवध का मुक्ति संग्राम, पृ. 96) अंग्रेज़ी हुकूमत के लखनऊ पर क़ब्ज़ा जमाने के बाद वे अवध के राजे-रजवाड़ों से मिलकर उनको ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ संगठित करती हैं। इसका सीधा सा अर्थ है कि बेगम को लेकर जो धारणा निर्मित की गई वह पूरी तरह ग़लत है—जिसका उल्लेख पहले किया गया है। यह हो सकता है कि उनके संबंध मम्मू खाँ से रहे हों लेकिन इसके बावजूद मूल्यांकन में इस बात का कोई अर्थ नहीं होना चाहिए। वे जनता के साथ अवध के लिए लड़ने वाली एक वीर योद्धा थीं। वे ऐसी अवध की बेगम हैं जो जनता के साथ अपनी सारी सामंती सीमाओं में रहते हुए अपने जीवन को एक सार्थक उद्देश्य से जोड़ती हैं। इसीलिए अंग्रेज़ लेखक विलियम रसेल अवध के विद्रोह में बेगमों की भूमिका के संदर्भ में 'माई इंडियन म्यूटिनी डायरी' (पृ. 275) में लिखते हैं, ''बेगम ने हमारे विरुद्ध अखण्ड युद्ध की घोषणा की है। इन रानियों और बेगमों के ओजस्वी चरित्र से ऐसा लगता है कि इन्हें अपने रनिवासों और जनानख़ानों में अद्‌भुत मानसिक शक्ति प्राप्त होती थी और वे किसी भी स्थिति में उपयुक्त क़दम उठाने में सक्षम थीं।'' (अवध का मुक्ति संग्राम, पृ. 14) इससे यह भी पता चलता है कि नवाब वाज़िद अली शाह द्वारा स्थापित 'परीखाना' मात्र नृत्य-संगीत तक सीमित नहीं था। जबकि प्रचारित यही किया गया कि नवाब 'परीखाना' की परियों के साथ भोग-विलास में डूबा रहता था। अवध के क्षेत्र में घूमते हुए नागरजी को जनता से जो पता चला उसमें बेगम के प्रति बहुत सम्मान का भाव था। इसी आधार पर नागरजी बेगम के प्रति अपनी राय बनाते हैं। ''...मैंने आम तौर पर पुराने लोगों से बेगम के प्रति आदरसूचक शब्द सुने हैं। सीधी-सी बात है कि राणा बेणी माधव बख्श जैसा ऊँचे दर्जे का पुरुष यदि बेगम का मान करता है तो उस महिला के प्रति हमारे मन में भी आदर जगता है। अंतिम युद्ध में राणा, राजा देवीबख्श, मुहम्मद हुसैन नाज़िम जैसे दिव्य पुरुष उनका साथ दे रहे थे। नाना साहब का दल, तुलसीपुर की रानी भी उनके साथ ही थीं। ऐसे लोग अनायास ही किसी ऐरे-ग़ैरे व्यक्तित्व से बंध नहीं सकते।'' (गदर के फूल, पृ. 204) इन तथ्यों से परिचित होने के बाद ज़रूरी है कि अंग्रेज़ी हुकूमत का पक्ष लेने वाले इतिहासकारों के दृष्टिकोण पर सही ढंग से विचार किया जाए। इसके साथ ही बेगम ने महिलाओं की एक टुकड़ी बना रखी थी जिसने सिकन्दर बाग़ की लड़ाई में अंग्रेज़ों का डटकर मुक़ाबला किया। इस टुकड़ी की एक सदस्य ऊदा देवी ने पीपल के पेड़ से 36 अंग्रेज़ों का शिकार किया। वह मर्दाना वेश में थी और अपने काम में बेहद चुस्त थी। इससे पता चलता है कि बेगम में सैन्य क्षमता किस स्तर की थी। तथ्य तो यहाँ तक मिलते हैं कि बेगम ने अपनी फ़ौज में दासियों, बेगमों आदि तक को शामिल किया हुआ

था। ऐसे और भी पात्र अवध के इतिहास के गर्त में छिपे हुए हैं। जैसे-जैसे इन पात्रों की खोज होगी, वैसे ही बेगम के प्रति बनाए गए नज़रिए में बदलाव करने पड़ेंगे।

वहीं बेगम की बौद्धिक क्षमता से परिचित होने के लिए कुछेक तथ्यों को जानना ज़रूरी है। ग़दर आन्दोलन के बाद महारानी विक्टोरिया (1 नवंबर, 1858) ने भारत के शासन को ईस्ट इंडिया कंपनी से अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने ग़दर में अंग्रेज़ों का साथ देने वाले राजाओं को सम्मानित किया और भारत के विकास के लिए एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया। पहले यहाँ महारानी के घोषणा-पत्र के कुछ अंश आपके सामने उद्धृत करते हैं।

''...हमें हिंदुस्तान के साथ दिली हमदर्दी है, उन मुसीबतों में जो कि उन महत्वाकांक्षी लोगों के कारनामों से नाजिल हुई है जिन्होंने अपने देशवासियों को धोखा देकर और उनमें झूठी ख़बरें फैलाकर उन्हें खुली बग़ावत के लिए उभार दिया। जंगे मैदान की उस बगावत को कुचल देने से हमारी ताक़त का इजहार हो चुका है। अब उन लोगों के अपराध क्षमा करके जो अब अपने कर्तव्य के पालन पर लौटना पसंद करें, हम अपनी कृपा का इजहार करना चाहते हैं...ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यकाल में नागरिक तथा सैनिक पदों पर काम कर रहे वर्तमान कर्मचारियों का हम उन्हीं पदों तथा अधिकारों पर बनाए रखने का भी बचन देते हैं किंतु भविष्य के नियम कानूनों का निर्धारण हम स्वेच्छानुसार करेंगे और उन्हें इनका पालन करना होगा...ईस्ट इंडिया कंपनी ने देशी राजाओं और संस्थानों से जो संधियाँ की हैं अथवा करार किए हैं, उनका अक्षरश: पालन किया जाएगा। दूसरे पक्ष द्वारा भी उनका पालन होगा, ऐसी भी मुझे आशा है। इस समय जितने प्रदेश पर हमारा अधिकार है, उससे अधिक पर अधिकार करने की हमारी इच्छा नहीं है। जिस प्रकार हम अपनी प्रभुसत्ता के अधिकारों तथा मातहत प्रदेशों पर किसी प्रकार और किसी का भी अतिक्रमण मौन रहकर सहन नहीं करेंगे, उसी प्रकार दूसरे के अधिकारों पर भी कोई आक्रमण करने की अनुमति नहीं देंगे। देशी नरेशों के अधिकार, सम्मान और पद की प्रतिष्ठा का विचार करते हुए हम उनके साथ नितान्त आदरपूर्वक व्यवहार करेंगे। हमारी यह भी इच्छा है कि हमारी प्रजा के समान ही वे उन्नति करें और आन्तरिक शक्ति तथा सुरक्षा और सुप्रबंध से प्राप्त होने वाली सामाजिक प्रगति का भी उन्हें लाभ प्राप्त हो... हमारे प्रजाजनों में जो भी अपनी शिक्षा, क्षमता एवं कर्तव्य के आधार पर योग्यता अर्जित कर ले तो जाति, धर्म, पंथ—किसी का भी विचार न करते हुए उसे नि:संकोच और निष्पक्ष भाव सहित हमारी सेवा में किसी पद पर भरती किया जाए...जो अन्य व्यक्ति अभी तक सशस्त्र होकर हमारे विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं, वे भी यदि अपने ग्रामों में वापस चले जाएँगे, अपने पहले के कामों में लग जाएँगे तो उन्होंने हमारे तथा हमारे शासन के विरुद्ध जो भी अपराध किए हैं, हम उन्हें नितान्त कृपा सहित भूल जाने को तत्पर हैं।'' (अवध का मुक्ति संग्राम, पृ. 84-85)

इस घोषणा-पत्र के जवाब में पहला घोषणा-पत्र बहादुर शाह ज़फर ने हिंदुस्तान की जनता के नाम और दूसरा बेगम हज़रत महल ने हिंदुस्तान की जनता के नाम जारी किया। इस घोषणा पत्र में रानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र में दिए गए वायदों आदि का बिंदुवार जवाब दिया गया है। अब बेगम हज़रत महल के घोषणा पत्र के कुछ अंश आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ।

''इंग्लैण्ड की रानी के घोषणा-पत्र में यह बताया गया है कि देशी नरेशों से कंपनी ने जो संधियाँ की हैं अथवा प्रस्ताव प्रस्तुत किए हैं, वह उन सभी का पालन करेगी। किंतु भारतीय जनता को इस कपटपूर्ण चाल को भली-भाँति समझ लेना चाहिए। कंपनी तो सम्पूर्ण भारत को ही हड़प कर चुकी है और इसको सिर आँखों पर रखना हो तो इंग्लैण्ड की रानी ने कौन सी नई बात कही है? भरतपुर नरेश को कंपनी ने वचन दिया था कि उसे पुत्रवत माना जाएगा और दूसरी ओर उसके सम्पूर्ण राज्य पर हाथ साफ़ कर दिया। लाहौर के अधिपति (दिलीप सिंह) को लन्दन में बंदी बनाकर रख दिया गया है और उन्हें भारत नहीं लाया जाता। नवाब शम्सुद्दीन को इन्हीं अंग्रेज़ों ने एक हाथ से फाँसी पर लटकाया और दूसरे हाथ से उसे सलाम करते हुए भी उन्हें तनिक सी लज्जा नहीं आई। सतारा के छत्रपति को, पूना के पेशवा को बंदी बनाया और मृत्यु-पर्यंत बिठूर में उनसे पेंशन चढ़वाते रहे। काशी नरेश को इन्होंने आगरा में बंदी बनाकर रखा। इन्होंने ही बिहार, उत्कल और बंग भूमि के राजाओं को और जागीरदारों को समूल नष्ट कर दिया। इन्होंने अवशिष्ट वेतन का वितरण करने के नाम पर अवध का सम्पूर्ण पैतृक धन भी हड़प लिया। हाँ, इतनी कृपा अवश्य ही की कि संधि के 7वें परिच्छेद में इस प्रतिज्ञा का अवश्य ही उल्लेख कर दिया कि भविष्य में और कोई वसूली नहीं की जाएगी। ऐसी स्थिति में जो कुछ कंपनी ने किया है, यदि उसी को स्वीकृत करने की बात इंग्लैण्ड की रानी भी करती हो तो पहले की और आज की स्थिति में अंतर ही क्या है? यह सब तो पुरानी बातें हैं। किंतु हाल में लिखी गई संधि की शर्तों की पूर्णत: उपेक्षा करके और हमारा लाखों रुपए का ऋण उसकी ओर होते हुए भी कंपनी को जब कोई अन्य बहाना हाथ न आया तो 'शासकों के प्रति प्रजा में असंतोष' का झूठा बहाना गढ़कर हमारे विपुल धन और करोड़ों रुपए के प्रदेश को हड़प लिया। यदि हमारी प्रजा इससे पूर्व नवाब वाजिद अली शाह के शासनकाल में सुखी नहीं थी तो अब हमारे प्रशासन काल में उसके सन्तुष्ट हो जाने का कारण क्या है? आज हमारी प्रजा हमारे प्रति जितनी श्रद्धा और प्रेम और राजनिष्ठा का प्रदर्शन कर रही है, उतनी तो शायद ही किसी राजा की प्रजा ने प्रदर्शित किया होगा। ऐसी स्थिति में हमारा प्रदेश हमें क्यों नहीं लौटाया जा रहा है? इंग्लैण्ड की रानी ने यह भी कहा है कि और अधिक प्रदेशों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने शासन में मिलाने की उसकी कोई इच्छा नहीं है किंतु इस कथन के बावजूद राज्यों पर दखल करने का कार्य पूर्ववत चल ही रहा है। यदि अब उसने सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था अपने हाथों में ले ली है, तो फिर हमारे प्रजाजनों द्वारा स्पष्टत: अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति कर देने के पश्चात भी हमारा राज्य हमें वापस क्यों नहीं दिया जा रहा है!...किसी भी राजा अथवा रानी ने आज तक विद्रोह के अपराध में सम्पूर्ण सेना अथवा सम्पूर्ण जनता को कदापि दण्डित नहीं किया, यह सत्य जगत विख्यात है। सभी को क्षमा किया जाएगा, क्योंकि सम्पूर्ण सेना अथवा समग्र हिंदुस्तान को दण्डित किया जाना कोई भी विचारवान व्यक्ति कदापि पसंद न करेगा। उन्हें यह भी भली-भाँति विदित है कि जब तक दण्ड का भय विद्यमान रहता है, तब तक विद्रोह की ज्वाला भी शांत नहीं हो पाती। 'मरता क्या न करता', यह कहावत भी सुप्रसिद्ध ही है। रानी की घोषणा में कहा गया है कि जिन्होंने विद्रोहियों को आश्रय दिया अथवा विद्रोह को प्रोत्साहन दिया है, उनका पता लगाकर भी उन्हें प्राणदण्ड नहीं दिया जाएगा, अपितु नाममात्र का दण्ड दिया जाएगा। किंतु जिन्होंने स्वयं हत्या की है अथवा हत्या करने में सहायता की है, उनके साथ किसी प्रकार भी दया प्रदर्शित नहीं की जाएगी, किंतु अन्य सभी को क्षमा प्रदान कर दी जाएगी। इस घोषणा को पढ़कर तो कोई मूर्ख भी यह समझ सकता है कि चाहे कोई अपराधी हो या न हो, कोई भी दण्डित हुए बिना नहीं

रहेगा। इस घोषणा में तो सभी कुछ लिखकर भी कुछ नहीं लिखा गया। किंतु एक तथ्य तो स्पष्टत: उल्लिखित है ही कि जिस किसी का भी क्रान्ति से संबंध रहा है, ऐसा एक भी व्यक्ति छोड़ा नहीं जाएगा। यह भी स्पष्ट है कि जिस नगर अथवा अंचल में हमारे सैनिक रुके हैं उस ग्राम के सभी ग्रामीणों को क्षमा नहीं किया जा सकता। शत्रुता से परिपूर्ण रानी की इस घोषणा को पढ़कर मेरे मन में यह चिन्ता उत्पन्न हो गई है कि हमारी प्रिय प्रजा के साथ क्या व्यवहार किया जाएगा। उस व्यवहार की कल्पनामात्र से मेरा हृदय भर आता है। अत: मैं स्पष्ट शब्दों में विश्वास दिलाती हूँ कि जो ग्राम-प्रमुख अपनी अनभिज्ञता के वशीभूत होकर अंग्रेज़ों के समक्ष आत्म-समर्पण कर चुके हैं, वे 1 जनवरी, 1859 से पूर्व ही हमारे शिविर में उपस्थित हो जाएँ। इस बात में कोई संशय नहीं है कि मैं उन्हें क्षमा प्रदान कर दूँगी। हिंदुस्थान के राज्यकर्ता दयालु और उदार रहे हैं, इस अनुभव को ध्यान में रखते हुए हमारी घोषणा पर विश्वास करो। सहस्त्रों लोगों ने यह अनुभव ग्रहण किया है, लक्ष्यविधि लोगों ने भारतीय शासकों की यह कीर्ति सुनी है, किंतु अंगरेजों ने कभी एक भी अपराधी को क्षमा किया है, यह किसी ने नहीं सुना होगा...मैं यह चाहती हूँ कि इस घोषणा-पत्र के भुलावे में किसी को भी नहीं फँसना चाहिए।'' (अवध का मुक्ति संग्राम, पृ. 88-89)

इस घोषणा-पत्र में जनता को ब्रिटिश हुकूमत की नीतियों से तो वाक़िफ़ कराया ही गया है साथ ही हिंदुस्तान की जनता को अपने साथ जोड़ने की जो चाल चली गई है उसकी भी सचाई बयान की गई है। यहाँ बेगम का दृष्टिकोण समूचे हिंदुस्तान के हालात को लेकर है। वह एक साथ अवध सहित समूचे हिंदुस्तान को सचेत करती हैं। हिंदुस्तान की जनता जिसमें सैनिक से लेकर किसान, मज़दूर, राजे-महराजे आदि आते हैं उन सभी को भी अपने निर्णय के प्रति सतर्क होने की बात कहती हैं। इस घोषणा पत्र से बेगम की बौद्धिक क्षमता का बेहतरीन नमूना मिलता है। अंग्रेज़ इतिहासकारों के लेखन में बेगम के प्रति दूसरी तरह की राय ज़्यादा दिखाई पड़ती है। वहाँ बेगम पर हर स्थिति में एक संदेह की बात जोड़ दी गई है। बेगम ने जो कुछ किया उसमें सिर्फ़ उनके हित नहीं थे। यदि ऐसा होता तो लोक में बेगम की अहमियत वह नहीं होती, जो उस समय थी। यहाँ तक कि आज के दौर में भी जब समाज को बाँटने वाली राजनीति अपने चरम पर है, तब भी बेगम हजरत महल को लेकर लखनऊ के लोगों में उसी तरह की श्रद्धा दिखती है। यह बात अलग है कि नेपाल जाने के बाद जो पत्र उन्होंने अंग्रेज़ी हुकूमत को लिखा उससे उनके पुत्र मोह की कमज़ोरी का पता चलता है। ऐसा नागरजी मानते हैं। इसके बावजूद बेगम के व्यक्तित्व को अवध हमेशा अपने सर आँखों पर बिठाकर नाज़ करेगा।

अंग्रेज़ों के प्रति नफ़रत

अमृतलाल नागर ने अवध के अलग-अलग इलाक़ों में घूमते हुए बड़े-बुर्ज़ुगों से जो कुछ सुना उससे पता चला कि ग़दर के दौरान अवध के लोगों की अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रति नफ़रत चरम पर थी। लोगों से नफ़रत के कारण भी पता चले। वैसे इस बात के पर्याप्त सबूत अंग्रेज़ों की डायरियों आदि में भी मिल जाते हैं। अंग्रेज़ हुकूमत कितना भी नवाब वाजिद अली शाह के समय में बदइंतजामी के दावे करती हो लेकिन इसके बावजूद अवध की जनता अपने बादशाह को इस तरह से गद्दी से बेदखल किये जाने से खफ़ा थी। नवाब वाज़िद अली शाह ने अपनी आत्मकथा 'हुज़्ने अख़्तर' में लिखा है—

ये वाजिद अली इब्ने अमजद अली
सुनाता है दास्तां रंज की
कि जब दस बरस सल्तनत को हुए
जो ताले थे बेदार सोने लगे
ज़फाकश का शाहे अवध नाम है
हुकूमत का आख़िर ये अंजाम है
जो लार्ड डलहौजी उस वक़्त थे
मज़ामीन उन्होंने ये ख़त में लिखे
रियाया बहुत तुमसे नाराज़ है
तुम्हारी रियासत है बदनाम शय
रियाया न देखेंगे हरगिज़ तबाह
फ़क़त नाम के तुम रहो बादशाह
महीना हर एक माह एक लाख का
मिलेगा तुम्हें कुछ नहीं शक ज़रा
बुलाकर अज़ीज़ों को मैंने कहा
कि रुख़सत मैं होता हूँ हाफ़िज ख़ुदा
चलेंगे हम इस शहर से अब ज़रूर
न है कुछ रिसासत न है कुछ ग़रूर... ।''

(1857 महाक्रांति या महाविद्रोह, पृ. 471)

इससे पता चलता है कि नवाब वाज़िद अली शाह को कितना आघात पहुँचा था। उन्होंने अंग्रेज़ों की बहुत सारी ख़्वाहिशों को पूरा किया जिसका ये अंजाम सामने आया। इसके बावजूद जब नवाब को अवध में सैनिकों के विद्रोह के बारे में पता चलता है तो वे अंग्रेज़ी हुकूमत से सैनिकों के दमन की बात कहते हैं। बेगम ने भी घोषणा पत्र में इन तथ्यों का उल्लेख किया है। अवध के साथ जो कुछ किया गया वही पहले दूसरी रियासतों के साथ किया जा चुका था। अंतर यहाँ बस आरोपों का था। इस कारण अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रति समाज के अधिकांश वर्गों में नफ़रत का भाव पैदा हो गया। इसी नफ़रत के कारण जनता कल की चिंता किए बिना लड़ रही थी। जो कुछ था उससे बेहतर की उम्मीद पाले थी। यह बात किसी एक क्षेत्र के लोगों में नहीं थी बल्कि कमोबेश सभी विद्रोही क्षेत्रों में देखने को मिली। तलमिज़ खालदुन ने थॉमस लोवे 'सेंट्रल इंडिया ड्यूरिंग द रिबेलियन ऑफ 1857 एंड 1858' को अपने लेख 'महाविद्रोह' में उद्धृत करते हैं, ''शिशुहंता राजपूत, धर्मान्ध ब्राह्मण, कट्टर मुसलमान, विलासी-स्थूलकाय-महत्वाकांक्षी मराठा...समान प्रयोजन के साथ आ गए थे; गो-हत्यारे और गो-पूजक, सुअर से नफ़रत करने वालों और सुअर खाने वालों, एक अल्लाह और उसके पैगंबर मोहम्मद की रट लगाने वालों और ब्रह्मा के रहस्यों का गुणगान करने वालों ने मिलजुकर विद्रोह किया।'' (इंकलाब 1857, सम्पादक : पी. सी. जोशी, भूमिका : इरफान हबीब, अनुवाद : हीरालाल कर्नावट, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2011, पृ. 5) इससे जनता के मन में अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रति नफ़रत का अंदाज़ा लग जाता है।

नवाब वाजिदअली शाह ने कलकत्ता से अवध की जनता के लिए विद्रोहियों से अपने को अलग रखने की बात कही। लेकिन जनता का नवाब की इस बात से कोई इत्तफाक नहीं था। वह तो अपने दीन-धर्म को बचाने के लिए संघर्ष कर रही थी। नवाब के शासन काल में भले ही दरबार के लोग अपने हितों के लिए जनता पर करों का बोझ डालते थे या फिर तालुकेदारों के कामों का दण्ड वहाँ की जनता को झेलना पड़ता था। लेकिन कहीं भी अवध दरबार की तरफ़ से जनता के बीच नफ़रत की भावना पैदा करने के प्रयास नहीं किए जाते थे। लोग-

बाग़ अपना जीवन आराम से अपने विश्वास के साथ बिता रहे थे। इसलिए नवाब के प्रति नफ़रत उस रूप में नहीं पैदा होती थी जिस तरह की अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रति। अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रति नफ़रत का भाव रसेल को भारत में ग़दर के अलग-अलग क्षेत्रों में घूमने के दौरान देखने-महसूसने को मिला। वह बनारस में 8 फ़रवरी, 1858 की एक घटना का उल्लेख करता है, ''देशी लोग हज़ारों की संख्या में धूल-धूसरित नंगे पाँव बढ़ रहे थे। गंगा की तरफ़। भयंकर गरमी। सड़क के दोनों ओर खाई-खंदकें थीं। टूटे हुए मिट्टी के बर्तनों से भरी हुई। टूटे हुए खपड़ों के बीच मरे हुए जानवरों की लातादाद हड्डियाँ। लोग सभी नंग-धड़ंग! अमीर, ग़रीब, आदमी, औरतें, बूढ़े, जवान और बच्चे सब!...इन हज़ारों लोगों में से एक भी ऐसा नहीं था, किसी भी उम्र का जिसने मेरे गोरे मुँह को दोस्ताना निगाह से देखा हो!...'' (रसेल डायरी, पृ. 15)

दरअसल, अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रति असंतोष का कोई एकमात्र कारण नहीं था। अवध में जनता ने सैनिकों के साथ जो विद्रोह किया उसकी प्रक्रिया बहुत पहले से चल रही थी। यह छोटे-छोटे विद्रोहों में प्रकट भी हुई। लेकिन इन बातों को इतिहास के विवेचन में शामिल नहीं किया जाता। इसके पीछे कहीं-न-कहीं ब्रिटिश हित छिपे हुए हैं। यदि अवध की सत्तावनी क्रान्ति को एक प्रक्रिया के रूप में समझने का प्रयास किया जाए तो अवध के ग़दर का पाठ बदल जाएगा।

वैसे सत्तावनी क्रान्ति के लिए एक बात और भी जिम्मेदार थी। वह थी इस हुकूमत का विदेशी होना। पंडित नेहरू 'आज़ादी की पहली जंग' शीर्षक लेख में इस तथ्य की तरफ़ ध्यान खींचते हैं। ''...हिंदुस्तान की हज़ारों बरसों की तारीख़ में यह पहला मौक़ा था कि विदेशी हमलावर यहाँ आए तो उनकी निष्ठा दूसरे देश के प्रति थी। हिंदुस्तान उनके लिए महज एक देश था जिस पर वे हुकूमत करते थे। एक माने में यह बहुत बड़ा फ़र्क़ था। सही माने में, अंग्रेज़ों के आने से पहले, चाहे यहाँ किसी भी तरह का शासन रहा हो, हिंदुस्तान आज़ाद था। उसकी अपनी एक हिंदुस्तानी सरकार थी जिसकी जड़ें हिंदुस्तान की मिट्टी में थीं और उसकी निष्ठा किसी और के प्रति नहीं थी...आज का हिंदुस्तान हज़ारों बरसों में यहाँ आई विभिन्न जातियों और संस्कृतियों के मिलान का नतीजा है...हमारे लिए यह सोचना बेतुका है कि हमारे ख़ून में कोई मिलावट नहीं है और हम दुनिया की अन्य जातियों से अलग हैं। इस प्रकार विभिन्न जातियों और संस्कृतियों के मिलान से हिंदुस्तान की यह कौम बनी...'' (पंडित जवाहर लाल नेहरू, आज़ादी की पहली जंग, नेहरू और आज़ाद 1857 पर वक्तव्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2014, पृ. 5-6) इस कौम को बनाने में ग़दर के दौरान के नेताओं—बाबा रामचरण दास, अली मियाँ, मौलवी अहमदुल्ला शाह, बेगम हज़रत महल आदि ने भी सायास प्रयास किए। इस एका या कौम को तोड़ने की जिस किसी ने भी हिमाकत की, जनता उसके ख़िलाफ़ हो गई। एक वाकिया बहादुर शाह जफ़र के दामाद नवाब इलाही बख़्श का है। ये नवाब फ़ैज़ाबाद में रहते थे। नवाब इलाही बख़्श ने ग़दर के दौरान एक भाषण में फरमाया, ''बिरादराने-वतन! दिल्ली की हुकूमत शाह बहादुर शाह ज़फ़र के हाथों में जब से आई है, मुल्क बरबादी की ओर बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा है। कंपनी की हुकूमत मुल्क में आ जाने से मुल्क में एक नई जान आ जाएगी...'' (गदर के फूल, पृ. 67) इसके पहले वह कुछ और कहते कि सभा के बीच से एक आदमी उठकर खड़ा हो गया। कहने लगा, ''बिरादराने वतन!, यह मिर्ज़ा साहब गद्दार हो गए हैं। ये मुल्क को बेईमान अंग्रेज़ों के हाथों में सौंप देना चाहते हैं। ये जब ख़ुद इज़्ज़त और रुतबा अता करने वाले शाह बहादुर शाह ज़फ़र के नहीं हुए, तो अब किसके होंगे?''...'' (गदर के फूल, पृ. 67) इसके बाद भीड़ ने इलाही बख़्श पर हमला कर दिया। यह घटना दिखाती है कि अवध की जनता कितनी प्रबुद्ध थी। यहाँ वही जनता की नज़र में श्रेष्ठ है जो जनता की भावनाओं के साथ खड़ा है। बाबा रामचरण दास, अली मियाँ, राणा बेणी माधव, मौलवी अहमदुल्ला शाह इसी कारण जनता की नज़र में नगीने हैं। यह बात अलग है कि आज के समय के हिसाब से इनकी बात करना अपने आप कुछ और बन जाना है। ये लोग धर्म-सम्प्रदाय की सीमाओं के परे जाकर अवध के लिए लड़े, अपने उसूलों के लिए लड़े। इसलिए जनता के दिलों में गहने के रूप में बैठे हैं।

विद्रोही सैनिकों की अति महत्वाकांक्षा और भितरघात की प्रवृत्तियाँ

अवध के विद्रोही सैनिकों में एक समय तक सामंजस्य दिखाई पड़ता है लेकिन कुछ समय बाद कमज़ोरी प्रकट होने लगती है। लखनऊ में विद्रोही सेना अंग्रेज़ी फौज से जब पराजित होने लगती है तो सामंजस्य ख़त्म होने लगता है। मौलवी अहमदुल्ला शाह गऊघाट की लड़ाई में जब बढ़त लेने में सफल होने लगे तो बेगम की फौजों ने मौलवी अहमदुल्ला शाह की स्थिति की घेराबंदी कर दी। मौलवी ने अपने नए दुश्मनों से लड़ना अस्वीकार कर दिया। वह अपने आपको हिंदुस्तानियों का नेता और संरक्षक मानते थे। घेरा दस दिन तक पड़ा रहा। अंततः एक साजिश के तहत मौलवी को कमज़ोर करने के प्रयास किए गए। लखनऊ के मोर्चे पर डटे रहने में नाकाम रहने के कारण मौलवी ने सीतापुर जाकर बाड़ी से मोर्चा संभाला। यहाँ बाद में बेगम भी बिरजीस कदर को लेकर पहुँचती हैं। यहाँ पर नवाब बिरजीस कदर ने मौलवी को बयात (आध्यात्मिक निष्ठा) पेश की। मौलवी ने बेगम के अफ़सरों को अपनी सम्पत्ति छोड़ने के लिए मजबूर किया, जिससे गोरखा सैनिकों के ख़िलाफ़ मोर्चे में नए साथियों ने उनका साथ छोड़ दिया। वह आगे मोहम्मदी लौटने को मजबूर हुए। वहीं पर उन्होंने अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। 15 मार्च, 1858 को उनकी ताजपोशी हुई। (अट्ठारह सौ सत्तावन, सम्पादक : राजेन्द्र शर्मा, सहमत मुक्तनाद, जुलाई-दिसम्बर 2007, वर्ष 9 अंक 37, दिल्ली, पृ. 63) मौलवी के साथ इस समय तक अज़ीमुल्ला खां, शाहज़ादा फ़िरोज़ शाह, बरेली के नवाब बहादुर खाँ आदि ने उनके नेतृत्व को स्वीकार लिया था। इसके साथ ही सोलह हज़ार सिपाही भी वहाँ इकट्ठा थे। रुहेलखंड के अभियान में पुवांया नरेश जगन्नाथ सिंह ने पहले सहयोग देने की कसम खाकर बाद में मौलवी को धोखा दिया। मौलाना फ़ज़्ले हक़ खैराबादी द्वारा दिया गया आँखों देखा वर्णन इस कृतघ्नता को स्पष्ट करता है। ''काफ़िर गंवार जमींदार ने बेगुनाह आमिल के साथ आध्यात्मिक विश्वासघात किया...'' (अट्ठारह सौ सत्तावन, सहमत मुक्तनाद, पृ. 63-64) पुवांया नरेश ने मौलवी का सिर काटकर अपने स्वार्थ पूरे किए। अंग्रेज़ों से इसके एवज में उसको पचास हज़ार रुपए का इनाम मिला। लेकिन इस गद्दारी के कारण पुवांया ग्राम इतिहास में हमेशा के लिए बदनाम हो गया। इसी तरह की फूट दूसरे मौक़ों पर भी देखने को मिल जाती है।

अवध की सेना अलग-अलग राजाओं-तालुकेदारों द्वारा इकट्ठा की गई एक भीड़ थी जो किसी को अपना नेता मानने को तैयार नहीं थी। सैनिकों को चूँकि कोई तनख़्वाह तो मिल नहीं रही थी इसलिए

वह लूटमार भी करते थे। दूसरे उनको अनुशासन में रहना सिखाया नहीं गया था। इसलिए लड़ाई तो वह बहादुरी से करते थे लेकिन अंग्रेज़ों के मुक़ाबले कमज़ोर पड़ जाते थे। नागरजी इन बातों को पूरी तरह स्वीकार नहीं करते। उनका मानना है कि अवध में बेगम जिस तरह से सेना के साथ घोड़े पर बैठकर उनका मनोबल बढ़ातीं उससे सेना की लक्ष्यबद्धता के प्रति संदेह नहीं किया जा सकता। ऐसी ही कमान नान साहेब और रानी लक्ष्मीबाई संभाल रही थी। अवध की सेना के कमान में एक से बढ़कर एक वीर योद्धा थे जिनकी बहादुरी की तारीफ़ अंग्रेज़ कमांडरों, सैनिकों और अख़बारों तक ने की। इस बात में कोई सन्देह नहीं है परंतु यह भी सच है कि उनका अपनी सेना पर उस तरह का नियंत्रण नहीं था जिस ढंग का अंग्रेज़ कमांडरों का अपने सैनिकों पर होता था। इसीलिए लखनऊ फतह के बाद सेना लूटपाट में शामिल हो गई थी। यही बात दूसरे मौक़ों पर भी देखने को मिली। वैसे अंग्रेज़ी सेना के सैनिक भी लूटमार करते थे परंतु अंग्रेज़ी सेना कठोर अनुशासन में बंधी थी। इस बात के पर्याप्त सबूत उपलब्ध हैं। नागरजी को भी अवध में घूमते हुए इस बात के सबूत मिले। लेकिन कुछ समय बाद वह कमांडर के आदेश के हिसाब से मोर्चा लेने के लिए तैयार हो जाते थे। मैं यहाँ अंग्रेज़ी सेना द्वारा किए गए लूटपाट को जायज नहीं ठहरा रहा हूँ और न ही अवध के सैनिकों द्वारा की गई लूटपाट की आलोचना कर रहा हूँ। मेरा उद्देश्य उन कमियों की तरफ़ इशारा करना है जिनके कारण अवध को हारना पड़ा। मौलवी अहमदुल्ला शाह का बेगम के साथ मतभेद या दूसरे विद्रोहियों के साथ मतभेद का फ़ायदा अंग्रेज़ी हुकूमत को मिला। बेगम के साथ धोखा तो नेपाल नरेश जंगबहादुर के द्वारा भी किया गया। इन सबसे अंग्रेज़ों को ही लाभ पहुँचा। इससे पता चलता है कि यदि संगठित ढंग से अंग्रेज़ी हुकूमत से संघर्ष चलाया गया होता तो परिणाम दूसरे आते। जनता को अंग्रेज़ों के अत्याचारों से सौ साल पहले ही मुक्ति मिल जाती और तब हिंदुस्तान की तस्वीर 1947 की तुलना में बेहतर होती।

अमानवीयता को भुनाने की राजनीति

नागरजी अवध के नगरों-गाँवों में घूमते हुए बार-बार ग़दर के विद्रोहियों और अंग्रेज़ हुकूमत द्वारा किए गए अमानवीय कृत्यों की पड़ताल करते हैं। गाँव-शहर घूमते हुए नागरजी को पता चलता है कि अमवट, फ़ैज़ाबाद या दूसरी जगहों पर अंग्रेज़ अफ़सरों की औरतों और बच्चों के साथ सैनिकों और जनता द्वारा अमानवीय बरताव किए गए। नागरजी इससे दु:खी होते हैं। अंग्रेज़ी हुकूमत ने विद्रोही सैनिकों के इन कृत्यों को पूरी दुनिया में ख़ूब ज़ोर-शोर से प्रचारित किया। लेकिन उन घटनाओं के बारे में बात नहीं की गई जहाँ अंग्रेज़ महिलाओं और बच्चों को हिंदुस्तान के लोगों ने बचाया और सुरक्षित स्थानों तक पहुँचाया। ऐसी घटनाओं का भी नागरजी लोक में सुनकर उल्लेख करते हैं। लोक में प्रचलित एक क़िस्सा प्रस्तुत है—ग़दर में एक अंग्रेज़ अफ़सर की दो बेटियाँ भगदड़ में लापता हो गईं। पता लगने पर वह अंग्रेज़ अधिकारी अपनी बेटी के लिए उस आदमी के यहाँ गया। लड़की से पूछा 'वेल माई डॉटर, तुमको इस पण्डत ने कैसा माफिक रखा?' लड़की बोली, 'पापा, इन्होंने मुझे बिल्कुल उसी तरह रखा जैसे बाप बेटी को रखता है!' (गदर के फूल, 55) इस बात की भी चर्चा की जानी चाहिए। बेगम ने कहीं भी सैनिकों से अंग्रेज़ औरतों, बच्चों के साथ बुरा बरताव करने की बात नहीं कही। यहाँ तक कि उन्होंने उन भारतीय हिंदू, पंजाबी सैनिकों को विद्रोही सैनिकों से क़ैद करने की बात कही जो अंग्रेज़ों के पक्ष में अपने ही देशवासियों से लड़ रहे थे। वह अंत तक अंग्रेज़ अफ़सरों की बीवियों और बच्चों को बचाने का प्रयास करती रहीं। इसके पीछे कहीं-न-कहीं उनकी मानवीयता थी। वहीं दूसरी तरफ़ कुछ विदेशी विद्वानों के लेखों में प्रयुक्त तथ्यों से यदि निष्कर्ष निकालें तो कुछ दूसरी बातें सामने आती हैं। इलाहाबाद में कैप्टेन नील ने विद्रोहियों के साथ अपने व्यवहार के बारे में लिखा है, "परमात्मा साक्षी है कि मैंने जो भी कार्य किया, वह न्याय का विचार करके ही किया है। मैं जानता हूँ कि मैंने कुछ अधिक क्रूरता प्रदर्शित की है; किंतु इन सम्पूर्ण परिस्थितियों पर सामूहिक दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सभी कुछ क्षम्य है। मैंने जो कुछ भी किया, अपने देश के लिए, उसके कल्याण के लिए किया है। मैंने यह कार्य अपनी साम्राज्य सत्ता का आतंक बैठाने तथा उसे पुन: स्थिरता प्रदान करने के लिए किया है...स्वदेश के लिए मैं यह घोर अत्याचार कर रहा हूँ, इसलिए परमेश्वर मुझे क्षमा करे।" (1857 का स्वातंत्र्य समर, विनायक दामोदर सावरकर, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2018, पृ. 174) विद्रोही सैनिकों को सज़ा देने के लिए अंग्रेज़ सरकार द्वारा जो न्यायालय बनाए गए उनमें पंचों की नियुक्ति में ख़ास तरह की शपथ दिलाई जाती थी। होम्स ने 'हिस्ट्री ऑफ सेपॉय वार' (पृ. 124) में न्यायाधीश को दिलाई जाने वाली शपथ का उल्लेख किया है, "मैं बंदी के अपराधी अथवा निर्दोश होने की चिंता न करते हुए उसे प्राणदंड दूँगा।" (1857 का स्वातंत्र्य समर, पृ. 120) कुछ ऐसे ही तथ्य दूसरे स्रोतों से मिलते हैं। कार्ल मार्क्स ने भी अपने भारत संबंधी लेखों में इस बात के सबूत दिये हैं। 4 सितम्बर 1858 को लंदन में 'भारतीय विद्रोह' शीर्षक से प्रकाशित लेख में इन तथ्यों का उल्लेख किया है। सिविल सर्विस का एक अफ़सर इलाहाबाद से लिखता है, "कोई दिन नहीं जाता जब हम उनमें से (न लड़ने वालों में से) दस-पन्द्रह को न टाँग देते हों।" एक और अफ़सर शान बघारता हुआ कहता है, "हम घोड़ों पर बैठे-बैठे ही अपने फ़ौजी फ़ैसले सुना देते हैं और जो कोई काला आदमी हमें मिलता है, या तो हम उसे टाँग देते हैं या गोली मार देते हैं।" (कार्ल मार्क्स भारत संबंधी लेख, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009, पृ. 95) विलियम रसेल ने भी इस बात का उल्लेख अपनी डायरी में किया है। यहाँ ग़ौर करने वाली बात है कि जो हुकूमत डलहौजी को सम्मानित करती है उससे ब्रिटिश हुकूमत की न्यायप्रियता की सचाई को समझा जा सकता है। नागरजी आर.सी. मजूमदार की ऐसी ही अवधारणाओं पर लोक से तथ्य इकट्ठा कर दूसरा परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं और उनकी सीमित दृष्टि की आलोचना करते हैं। सवाल यहाँ दृष्टिकोण का है। आख़िर में अंग्रेज़ों द्वारा लिखे गए स्रोतों को ही अपने लेखन का आधार क्यों बनाया जाता है? क्या जनता के बीच जाकर ऐतिहासिक स्रोतों की पड़ताल नहीं की जानी चाहिए? इस पर विचार करने की ज़रूरत है। आज जब अवध की बेगमों द्वारा लिखी गईं चिट्ठियाँ सामने आ चुकी हैं, अवध के तालुकेदारों पर लिखी गई किताबें प्रकाशित हैं तब इस पर अवश्य सोचना चाहिए। नागरजी ने इसकी शुरुआत की थी, इसको आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी हम सबकी है।

संपर्क : हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय,
फैकल्टी ब्लॉक-बी, तालेगाँव पठार, गोवा-403206
ईमेल : bipintiwari85@gmail.com
मोबाइल : 9130570121